मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 136 ● वर्ष 14, अंक 12 ● मार्च 2025 ● दस रुपये

विशेष अंक
24 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

छावा : फ़ासीवादी भोंपू से निकली एक और प्रोपेगैण्डा फ़िल्म 22

स्त्री मुक्ति आन्दोलन को सुधारवाद, संशोधनवाद, नारीवाद और एनजीओपन्थ की राजनीति से बाहर लाना होगा 13

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला
मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 16

इतिहास के गलियारों से आती आवाज़ को सुनो!

शहीदे-आज़म भगतसिंह आज देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों और मेहनतकशों को क्या सन्देश दे रहे हैं?

23 मार्च को शहीदे-आज़म भगतसिंह और उनके महान साथियों सुखदेव और राजगुरू की शहादत को 94 वर्ष पूरे हो जायेंगे। अंग्रेज़ी हुकूमत तो भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों से बुरी तरह भयाक्रान्त थी ही, लेकिन आज़ादी के बाद के क़रीब आठ दशकों में इस देश के शासक वर्ग ने भी भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को तरह-तरह से दबाने की कोशिश की है। ज़ाहिर है, चूँकि भगतसिंह और उनके साथियों के प्रति इस देश के मज़दूरों, आम मेहनतकश लोगों और छात्रों-युवाओं के दिल में गहरी भावना है, इसलिए भगतसिंह के नाम को पूरी तरह से दबाने की शासक वर्गों की कोई भी साज़िश कामयाब नहीं हो सकती थी। इस बात को इस देश के हुक्मरान भी भली-भाँति समझते हैं। *इसलिए भगतसिंह के विचारों को उनकी ही प्रतिमाओं, तस्वीरों, फूलमालाओं के बोझ, आदि के नीचे दबा देने की कोशिशें की जाती रही हैं।* भगतसिंह की एक ग़लत छवि लोगों के बीच प्रचारित-प्रसारित की जाती रही है। यह छवि है एक बहादुर नौजवान की जिसने बम-पिस्तौल के रास्ते देश की आज़ादी के लिए लड़ाई का रास्ता चुना और इसी रास्ते पर चलते हुए शहीद हो गया।

सम्पादकीय अग्रलेख

त्रासद विडम्बना है कि इस छवि में जो नायकत्व, बहादुरी या दबंगपन दिखायी देता है, उसके प्रभाव में देश के धनिक वर्गों के ठेकेदार, धनी किसान-कुलक-ज़मीन्दार और व्यापारियों की गुण्डा और लम्पट औलादें भी अपनी भारी-भरकम कारों व गाड़ियों पर भगतसिंह की मूँछों पर ताव देते, पिस्तौल पकड़े, किसी जट्ट फ़ार्मर से मिलती-जुलती काया वाली तस्वीर के स्टिकर लगाकर घूमते हैं। वही धनिक व पूँजीपति वर्ग जिनके ख़िलाफ़ भगतसिंह ने क्रान्ति की अलख जगाने की बात की थी! भगतसिंह के विचारों, उनकी विरासत और उनकी स्मृतियों के साथ इससे ज़्यादा भद्दा मज़ाक और कोई नहीं हो सकता है। साथ ही, देश के शासक वर्गों ने भगतसिंह को संसद के गलियारों, पार्कों और उद्यानों में प्रतिमाएँ लगाकर क़ैद करने की लगातार कोशिशें की हैं। हर कोई उनके प्रति देश की आम जनता में मौजूद भावना को उनकी छवि का इस्तेमाल कर भुनाना चाहता है, लेकिन साथ ही उनके विचारों को इसी प्रतीकवाद, प्रतिमावाद में दबा डालना चाहता है।

देश में छात्रों की पाठ्यपुस्तकों में स्कूल से लेकर कॉलेज के स्तर तक अम्बेडकर, नेहरू, गाँधी, और पिछले कुछ दिनों से सावरकर, गोलवलकर, मूंजे के लेख, निबन्ध आदि और साथ ही उनके विचारों व जीवन के बारे में लिखे लेख आदि मिल जायेंगे। लेकिन आपको भगतसिंह और उनके साथियों और उनकी समूची क्रान्तिकारी धारा के बारे में बिरले ही कहीं कुछ मिलेगा। शासक वर्ग की मैनेजिंग कमेटी, यानी सरकार का काम शासक वर्ग की कोई भी पार्टी कर रही हो, चाहे वह कांग्रेस या भाजपा की सरकारें हों या फिर संसदीय वामपन्थियों व क्षेत्रीय दलों वाले किसी तीसरे मोर्चे

(पेज 11 पर जारी)

मज़दूरों की चीख़ों और मौतों पर टिका पूँजीवाद का निर्माण उद्योग

● प्रेम प्रकाश

बीती 22 फ़रवरी की सुबह तेलंगाना के नागरकुलनूर ज़िले में निर्माणाधीन सुरंग की छत के ढह जाने से 6 मज़दूर व 2 इन्जीनियर उसमें फँस गये। इस दिल दहला देने वाली घटना को एक महीना बीत जाने के बावजूद अभी तक केवल दो व्यक्तियों के शवों को निकाला जा सका है। बाक़ी 6 लोगों का अभी तक कोई पता नहीं चल सका है। और अब शेष लोगों के बचे होने की बहुत ही कम सम्भावना है। 44 किलोमीटर लम्बी निर्माणाधीन सुरंग परियोजना 'श्रीशैलम लेफ़्ट बैंक कैनाल' (एस.एल.बी.सी.) के भीतर 14 किलोमीटर पर यह हादसा सुरंग के ऊपर की चट्टान के ढहने व अचानक पानी के रिसाव के तेज़ होने के कारण हुआ। हादसे के चार दिन पहले ही मज़दूरों ने अधिकारियों को सुरंग में पानी के रिसाव की सूचना दे दी थी फिर भी इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। हादसे के दिन 50 मज़दूरों को सुरंग में काम करने के लिए भेजा गया। भेजने से पहले न तो सुरक्षा का कोई पुख़्ता इन्तज़ाम किया गया और न ही आपदा की स्थिति में उससे निपटने के लिए कोई तैयारी की गयी। सुरंग की छत ढहने पर 42 मज़दूर तो किसी तरह अपनी जान बचाकर निकल पाने में सफल रहे परन्तु आगे के 8 लोग जो सुरंग बोरिंग मशीन में काम कर रहे थे अन्दर ही पानी, मिट्टी और मलबे में फँस गये। फँसे हुए लोगों में 2 लोग उत्तर प्रदेश से, 4 लोग झारखण्ड से, एक जम्मू और कश्मीर से तथा 1 पंजाब से हैं। इनमें से 6 लोग मुख्य ठेका कम्पनी 'जेपी एसोसिएट' से हैं तथा 2 लोग 'रॉबिन्स इण्डिया हैंडलिंग एण्ड टनेल बोरिंग मशीन' कम्पनी से हैं।

हर बार इस तरह के हादसों में जैसा होता है, इस बार भी वही हुआ। घटना के बाद प्रशासन तथा राज्य मशीनरी हरकत में आयी और सेना, नेवी, एन.डी.आर.एफ. तथा एस.डी.आर.एफ. (हैदराबाद) की टीमों को बुलाया गया। 'नेशनल जियोफ़िज़िकल रिसर्च इंस्टीट्यूट' (एन.जी.आर.आई.) ने भी सुरंग के भीतर रडार सर्वे किया परन्तु मज़दूरों की स्थिति का कोई ठोस पता नहीं चला। 12 से अधिक टीमें काम कर रही हैं परन्तु अभी तक बाक़ी बचे मज़दूरों का कोई सुराग नहीं मिल पाया है। तेलंगाना के मुख्यमन्त्री रेवन्त रेड्डी तथा सिंचाई मन्त्री उत्तम कुमार रेड्डी बचाव कार्य के बारे में बयान दे रहे हैं और अपने को पाक-साफ़ दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने भी तेलंगाना के मुख्यमन्त्री से बात करके यह दिखाने की कोशिश की कि उनको मज़दूरों की ज़िन्दगी की कितनी फ़िक्र है। लेकिन आये दिन होने वाली मज़दूरों की मौतों पर इन सबकी चुप्पी यह साबित करती है कि मज़दूरों की मौतों के लिए ये सभी बराबर के ज़िम्मेदार हैं।

श्रीशैलम लेफ़्ट बैंक कैनाल परियोजना एक सिंचाई परियोजना है, जिसमें कृष्णा नदी के पानी को श्रीशैलम

(पेज 9 पर जारी)

आपस की बात

अपनी ज़िन्दगी बदलने के लिए बम्बइया मसाला फ़िल्मों की नही बल्कि मज़दूरों के संघर्षों के गौरवशाली इतिहास की जानकारी ज़रूरी है

हर व्यक्ति की तरह मज़दूरों को भी दिनभर काम के बाद मनोरंजन की ज़रूरत होती है। हमारे लिए कोई अच्छे मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं हैं, तो जब भी थोड़ी मोहलत मिलती है हम में से ज़्यादातर लोग बॉलीवुड की मसाला फ़िल्में देखना पसन्द करते हैं। इन फ़िल्मों को देखकर हम कुछ देर के लिए अपनी कठिन ज़िन्दगी को भूल जाते हैं, पर इससे हमारे वास्तविक जीवन में कोई फ़र्क़ नही आता है। सुबह होते ही हम फिर कोल्हू के बैल की तरह खटने निकल पड़ते हैं। अक्सर फ़िल्मों में हीरो मेहनतकश जनता का हमदर्द और अमीरों का दुश्मन दिखाया जाता है। असलियत में ये तमाम हीरो मज़दूरों और मेहनतकशों से सख़्त नफ़रत करते हैं और उसी व्यवस्था के चाकर हैं जो मेहनतकशों के शोषण पर टिकी है।

असल बात तो यह है कि इन फ़िल्मी सितारों और कारख़ाना मालिक के चरित्र में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है। जिस तरह कारख़ाने में सारी मेहनत तो मज़दूर करता है, पर मुनाफ़ा मालिक हड़प लेता है, उसी तरह फ़िल्म को बनाने में भी भारी योगदान मेहनतकशों का होता है, लेकिन सारा श्रेय और मुनाफ़ा निर्देशक और फिल्म के हीरो-हीरोइन आपस में बाँट लेते है। अपने आलीशान बंगलों, कीमती कपड़ों, और महँगी गाड़ियों का रौब दिखाते समय ये लोग भूल जाते हैं कि इन तमाम चीज़ों के पीछे मज़दूरों की मेहनत छिपी हुई है।

इसलिए साथियो, इनके मोह में अपना वक़्त गँवाने के बजाय हमें अपने संघर्षों के इतिहास को जानना चाहिए जिसे हम भूल गये हैं। हमें ऐसी किताबें पढ़नी चाहिए और ऐसी फ़िल्में ढूँढ़कर देखनी चाहिए जो हमें बहलाएँ नहीं बल्कि सच बतायें।

आज हमें दिमाग़ी नशे की खुराकें नहीं चाहिए, जो कुछ देर के लिए हमें अपना दुःख दर्द भुलवा देती हैं मगर उसका कोई इलाज नहीं करतीं। हमें ऐसी सच्चाई चाहिए जिसके सहारे हम अपने जीवन और अपने जैसे करोड़ों मज़दूरों के जीवन को बदल सकते हैं।

– राजकुमार, लखनऊ

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिये जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस के अवसर पर आँगनवाड़ीकर्मियों ने मनाया ‘संघर्ष का उत्सव’!

8 मार्च की विरासत को याद किया और भविष्य के संघर्ष की तैयारी का संकल्प लिया दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों ने!

● वृषाली
दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन

अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस (8 मार्च) के अवसर पर 9 मार्च के दिन दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों ने ‘संघर्ष का उत्सव’ मनाया। ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के बैनर तले स्त्री कामगारों ने एक नये अन्दाज़ में 8 मार्च की विरासत को याद किया और भविष्य के संघर्षों का संकल्प लिया। इस मौक़े पर दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों के समर्थन में हरियाणा से आँगनवाड़ीकर्मी कमला दयोरा और छात्र-नौजवान व बुद्धिजीवी भी शामिल रहे। सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता कॉलिन गोंज़ाल्वेस ने भी इस अवसर पर महिलाकर्मियों को सम्बोधित किया। इसके अलावा ‘रेस्टोरेण्ट वर्कर्स यूनियन’ (यूएस), इंग्लैण्ड से ‘युनाइट द यूनियन’ व ‘इण्डियन लेबर सॉलिडैरिटी (यूके), न्यूज़ीलैण्ड से ‘प्रवासी कामगार यूनियन’, पाकिस्तान से ‘रेड वर्कर्स फ्रण्ट’, भारत से ‘इण्डियन फ़ेडेरेशन ऑफ़ ट्रेड यूनियन (IFTU)’ ने इस कार्यक्रम के आयोजन पर ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ को बधाई-पत्र भेजा। कार्यक्रम के समापन से पहले महिलकर्मियों ने दिल्ली के झण्डेवालान इलाक़े में रैली और नारों की गूँज से स्त्री मुक्ति के लिए आवाज़ बुलन्द की।

कार्यक्रम की शुरुआत स्त्री मुक्ति का सन्देश देते हुए गीत से हुई। इसके बाद संचालन करते हुए विशाल ने सबसे पहले 8 मार्च की जुझारू विरासत के बारे में बात रखी। उन्होंने कहा कि आज स्त्री दिवस को बाज़ार का उत्सव बना दिया गया है जबकि यह संघर्ष का उत्सव होना चाहिए। आँगनवाड़ी कर्मियों का संघर्ष दुनिया भर की आधी आबादी के संघर्षों का ही हिस्सा है। आज केयर वर्क में लगी महिलाकर्मी के श्रम के शोषण की बुनियाद भी यही है कि दुनियाभर में स्त्रियों की मेहनत की लूट आसान है। दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों की लड़ाई भी सिर्फ़ मानदेय तक सीमित नहीं है। अपने संघर्षों में आँगनवाड़ी कर्मियों ने पितृसत्ता को भी चुनौती दी है।

दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों ने आज से 3 साल पहले अपनी ऐतिहासिक हड़ताल के दौरान 8 मार्च को दिल्ली सचिवालय पर ‘आँगनवाड़ी स्त्री अधिकार रैली’ निकाली थी। 2022 में 38 दिन लम्बी चली हड़ताल को तोड़ पाने में नाक़ाम केजरीवाल सरकार ने केन्द्र की भाजपा सरकार के साथ मिलीभगत से 9 मार्च को हड़ताल पर ‘एस्मा’ थोपने का ऑर्डर जारी करवा दिया था। इस हड़ताल के बाद दिल्ली सरकार के ‘महिला एवं बाल विकास विभाग’ ने 884 महिला कर्मियों को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से बदले के भावना से बर्ख़ास्त कर दिया था। यूनियन के संघर्ष के कारण क़रीब 740 आँगनवाड़ी कर्मियों को वापस काम पर लेने के लिए दिल्ली सरकार को मजबूर होना पड़ा है। दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों का संघर्ष अब भी जारी है। इस ग़ैर-क़ानूनी टर्मिनेशन के ख़िलाफ़ यूनियन की ओर से दिल्ली उच्च न्यायालय में मुक़दमा चल रहा है। जल्द ही बाक़ी 144 वर्कर्स और हेल्पर्स को भी काम पर वापस लिया जायेगा और उन्हें टर्मिनेशन के पूरे दौर का मानदेय भी एकमुश्त मिलेगा। यह लक्ष्य प्राप्त होने तक मौजूदा संघर्ष जारी रहेगा।

इस मुक़दमे में यूनियन के पक्ष का प्रतिनिधित्व सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता कॉलिन गोंज़ाल्वेस कर रहे हैं। सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने बताया कि अपने जायज़ हक़ों के लिए संघर्ष करना हमारा जनवादी अधिकार है। 2022 की हड़ताल के बाद जिस तरीक़े से विभाग ने 884 महिलाकर्मियों को बर्ख़ास्त किया, वह ग़ैर-क़ानूनी था। आज हमें सड़क और अदालत, दोनों ही मोर्चों पर अपना संघर्ष जारी रखने की ज़रूरत है। यह हमारा संघर्ष ही है जिसकी बदौलत आज टर्मिनेट की गयीं महिला कर्मियों में से 750 से भी ज़्यादा की पुनः बहाली विभाग को करनी पड़ी है। यही नहीं, आज देश भर में स्कीम वर्कर्स संघर्षरत हैं; यही कारण है कि पिछले साल गुजरात हाई कोर्ट ने केन्द्र व राज्य सरकारों को आँगनवाड़ी कर्मियों को नियमित करने के लिए ज़रूरी क़दम उठाने का फ़ैसला सुनाया था। कॉलिन ने कहा कि आँगनवाड़ी कर्मियों के संघर्ष का सफ़र काफ़ी लम्बा रहा है, और अब वे जीत के बेहद क़रीब हैं।

यूनियन अध्यक्ष शिवानी ने महिलाओं को सम्बोधित करते हुए स्त्री मुक्ति के संघर्ष की लड़ाई पर बात रखी। शिवानी ने स्त्री दिवस की विरासत को रेखांकित करते हुए उसके जुझारू इतिहास से महलाकर्मियों को परिचित कराया। उन्होंने कहा कि सभी स्त्रियाँ उत्पीड़न का शिकार हैं लेकिन सभी स्त्रियों की माँगें और आकांक्षाएँ एक नहीं हैं। स्त्री दिवस कामगार स्त्रियों के संघर्ष की याददिहानी है, स्त्री दिवस उनका है जो संघर्ष में शामिल हैं। इसे हम इस मायने में ही मना सकते हैं कि

(पेज 6 पर जारी)

ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन को पुलिस द्वारा बाधित करने की कोशिश!

● ऑटोमोबाइल उद्योग अस्थायी मज़दूर यूनियन

बीते 9 मार्च को गुड़गाँव (हरियाणा) में ऑटोमोबाइल उद्योग अस्थायी मज़दूर यूनियन (AICWU) द्वारा ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन को सफ़ल बनाने के लिए इसका प्रचार मारुति-हीरो-होण्डा-सुज़ुकी जैसी प्रमुख मदर कम्पनियों समेत रिको-सनबीम आदि तमाम वेण्डर कम्पनियों के हज़ारों मज़दूरों के बीच किया गया। गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा के बीच फैली ऑटोमोबाइल पट्टी में हज़ारों पर्चे बाँटे गये और हज़ारों मज़दूरों का सम्मेलन में शामिल होने के लिए पंजीकरण किया गया। अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन से मालिकों-प्रबन्धन-प्रशासन सबके कान खड़े हो गये और उन्होंने सम्मेलन में बाधा डालने की पूरी कोशिश की। पुलिस द्वारा सम्मेलन को बाधित किये जाने पर हम आगे बात करेंगे, इससे पहले जान लेते हैं कि आज ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों के हालात क्या है और किन प्रमुख माँगों को लेकर अस्थायी मज़दूर सम्मेलन का आयोजन किया गया!

ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों के हालात

देश के सबसे बड़े मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर ऑटोमोबाइल सेक्टर में अस्थायी मज़दूरों के हालात आज नारकीय स्थिति में हैं। बेहद कम वेतन में, बिना किसी श्रम अधिकार के उन्हें खटाया जाता है। ओवरटाइम का डबल रेट से पेमेण्ट नहीं होता। कई बार साप्ताहिक छुट्टियाँ तक नहीं मिलतीं। ट्रेनी, अप्रेण्टिस, फिक्स्ड टर्म, स्टूडेण्ट ट्रेनी, ठेका आदि के नाम पर मज़दूरों से स्थायी प्रकृति के काम पर अस्थायी बनाकर काम करवाने के नये-नये रूप निकाले गये हैं। मोदी सरकार के नये लेबर कोड इसमें ऑटोमोबाइल कम्पनियों व उनके प्रबन्धन की पूरी मदद करेंगे। सिर्फ़ आधिकारिक आँकड़ों की बात करें, तो गुड़गाँव-मानेसर में 80 हज़ार से ज़्यादा मज़दूर प्रमुख ऑटोमोबाइल प्लाण्टों में काम कर रहे हैं। असली आँकड़े इससे कहीं ज़्यादा है। समूचे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल-नीमराणा तक फैली ऑटोमोबाइल पट्टी में मौजूद समस्त प्रमुख व वेण्डर प्लाण्टों की बात करें, तो यह संख्या दस लाख से ऊपर पहुँच जाती है। इस भारी मज़दूर आबादी का 85 फ़ीसदी से ज़्यादा अस्थायी मज़दूर है। यानी मज़दूरों को 'हायर एण्ड फ़ायर' के तहत कम्पनियाँ मनचाहे तरीक़े से काम पर रखती हैं और मनचाहे तरीक़े से निकाल देती हैं। किसी को 7-8 महीने में बाहर का रास्ता दिखाया जाता है, तो किसी को दो-तीन साल तक निचोड़ने के बाद ये कम्पनियाँ सड़कों पर फेंक देती हैं। निकलने पर मज़दूरों को आम तौर पर ऐसा कोई कार्य-अनुभव प्रमाणपत्र भी नहीं दिया जाता जिसके आधार पर उन्हें किसी अन्य कम्पनी में आसानी से काम मिल सके। ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की जवानी इसी में निकल जाती है। तमाम अस्थायी मज़दूर इस अनिश्चितता और डर में जीते रहते हैं।

ऊपर से अस्थायी मज़दूरों का वेतन स्थायी मज़दूरों की तुलना में कई बार तो चार-पाँच गुना कम होता है, जबकि अक्सर वे वही काम करते हैं जो स्थायी मज़दूर करते हैं। अगर मारुति सुज़ुकी, हीरो मोटोकॉर्प व होण्डा के प्लाण्टों की ही बात करें, तो इनमें अस्थायी मज़दूरों का वेतन (ओवरटाइम सहित) 15 से 30 हज़ार रुपये प्रति माह के बीच है, जबकि स्थायी मज़दूर का वेतन 1 लाख के ऊपर है। अगर कुशल और अकुशल के अन्तर की बात करें, तो भी वेतन में इतना ज़्यादा अन्तर होना किसी भी तरह से जायज़ नहीं है। न तो अस्थायी मज़दूरों को समान बोनस मिलता है, न समान छुट्टियाँ और न ही अन्य समान सुविधाएँ मिलती हैं। **स्थायी काम पर स्थायी नौकरी, वेतन में वृद्धि, समान काम पर समान वेतन, ठेका प्रथा का उन्मूलन, ट्रेनी-अप्रेण्टिस आदि के नाम पर अस्थायी मज़दूरों के शोषण के ख़ात्मे और ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों की यूनियन को मज़बूत बनाने के लिए 9 मार्च ऑटो सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन का आयोजन किया गया था।** अब बात करते हैं 9 मार्च को पुलिस द्वारा सम्मेलन को बाधित करने पर!

ज़ोर है कितना दमन में तेरे! देख लिया है देखेंगे!

सम्मेलन के आयोजन के ठीक पहले मानेसर के एसीपी ने यूनियन के प्रतिनिधि को बुलाकार सम्मेलन के बारे में बातचीत की थी। इस मुलाकात में यूनियन के क़ानूनी सलाहकार से कोई भी क़ानूनी आज्ञा या परमिशन लेने की बात नहीं कही गयी थी। इसके अलावा भी यूनियन से इस सम्मेलन की आज्ञा या परमिशन लेने के लिए पुलिस प्रशासन ने कभी नहीं कहा था। सम्मेलन पहले मानेसर में होना था। लेकिन वहाँ पर सम्मेलन स्थल के प्रबन्धक को पुलिस ने डरा-धमकाकर उस जगह की बुकिंग को रद्द करवा दिया। AICWU के प्रतिनिधियों ने गुड़गाँव में ही दूसरे स्थान की बुकिंग की और वहाँ सम्मेलन की शुरुआत की। इसकी वजह से दर्जनों मज़दूर नये सम्मेलन स्थल पर नहीं पहुँच सके। लेकिन इस नये स्थान पर भी पुलिस ने कुछ घण्टों बाद ही वहाँ पहुँचकर सम्मेलन की प्रक्रिया को बाधित किया और उस स्थान से मज़दूरों को जाने को कहा। बाद में पता चला कि पुलिस को नये स्थान की सूचना देने का काम आन्दोलन के भीतर ही ट्रोजन हॉर्स की तरह शासक वर्ग का काम करने वाले 'सहयोग केन्द्र-सीएसटीयू' के लोगों ने किया था। बहरहाल, यह पूरी कार्रवाई पुलिस ग़ैरक़ानूनी तरीके से कर रही थी क्योंकि सम्मेलन के पहले पुलिस प्रशासन से बातचीत हुई थी और उन्होंने किसी भी तरह से कोई परमिशन या आज्ञा लेने की बात आयोजकों से नहीं कही थी। पुलिस का कहना था कि आप केवल अपने ऑफिस पर मीटिंग कर सकते हैं। लेकिन क्या पुलिस कभी कम्पनियों के प्रबन्धन, मालिकान और श्रम विभाग के अधिकारियों की महँगे बैंक्वेट हॉलों में होने वाली सौदेबाज़ी की मीटिंग रोकती है? क्या उन्हें कभी कहा जाता है कि आप केवल अपने दफ़्तर में बैठक कर सकते हैं, किसी धर्मशाला या बैंक्वेट हॉल में नहीं? ये नियम मालिकों और प्रबन्धन के लिए और सरकारी अधिकारियों के लिए नहीं हैं। ये केवल मज़दूरों के लिए वक़्त पड़ते गढ़ दिये जाते हैं, ताकि अस्थायी मज़दूर एकजुट और संगठित न हो सकें और मालिकों की मज़दूरों के शोषण की चक्की बदस्तूर चलती रहे।

ज़ाहिर है कि अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन की ख़बर से ही तमाम प्रमुख ऑटो कम्पनियों व वेण्डर कम्पनियों के मालिकान और प्रबन्धन के कान खड़े हो गये थे। वजह यह कि अगर ऑटोमोबाइल सेक्टर की 85 प्रतिशत अस्थायी मज़दूर आबादी, जिसकी उपेक्षा सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों व स्थायी यूनियनों के नेतृत्व ने की है, एकजुट और संगठित होने की शुरुआत कर देगी तो इन कम्पनियों के मालिकान और प्रबन्धन के लिए श्रम क़ानूनों का नंगे तरीक़े से उल्लंघन करने और मज़दूरों का बर्बर शोषण करने की चालें भविष्य में कामयाब नहीं हो पायेंगी। यह डर मालिकान और प्रबन्धन को सता रहा था और इसी वजह से पुलिस प्रशासन का सहारा लेकर वे लगातार ही कोशिश कर रहे थे कि इस सम्मेलन को होने से रोका जा सके। लेकिन पुलिस प्रशासन सम्मेलन को बाधित कर पाता, इससे पहले सम्मेलन की कार्रवाई आगे बढ़ चुकी थी। सम्मेलन का स्थान पुलिस को सूचित करने का काम स्वयं मज़दूर आन्दोलन में घुसे 'सहयोग केन्द्र-सीएसटीयू' के भितरघातियों ने किया, जिसका प्रमाण जल्द ही AICWU के कार्यकर्ताओं को मिल गया।

सम्मेलन में आये मज़दूरों का स्वागत करते हुए यूनियन की संयोजन समिति के सदस्य भारत ने कहा कि AICWU का लक्ष्य समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर में अस्थायी मज़दूरों की एकजुट यूनियन खड़ा करना है। सभी ने अस्थायी मज़दूरों की अनदेखी की है और अब अस्थायी मज़दूरों को ख़ुद ही संगठित होना होगा। चूँकि अस्थायी मज़दूर इस सेक्टर की कुल मज़दूर आबादी का 85 फ़ीसदी हैं, इसलिए अस्थायी मज़दूरों की यूनियन के पास ही वह शक्ति होगी, वह मोलभाव की ताक़त होगी कि वह इस सेक्टर में मज़दूरों के अधिकारों की लड़ाई को आगे बढ़ा सके। आगे यूनियन प्रतिनिधि अनन्त ने बात रखते हुए कहा कि आज अस्थायी मज़दूरों की सबसे प्रमुख माँग है स्थायी प्रकृति के काम पर स्थायी रोज़गार की, समान काम के लिए समान वेतन की, स्वैच्छिक व डबल रेट से भुगतान वाले ओवरटाइम की, और साथ ही ईएसआई, पीएफ़, बोनस समेत समस्त श्रम अधिकारों की। ज़ुबानी जमा ख़र्च के तौर पर हर कोई अपने पर्चे या पोस्टर में नीचे कहीं कोने में लिख देता है कि "अस्थायी को स्थायी करो", पर अस्थायी मज़दूरों के मसलों व समस्याओं को पिछले तीन दशकों में कभी किसी ने प्राथमिकता नहीं दी चाहे वे केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें हों, या स्थायी यूनियनों का नेतृत्व। आज कम्पनियों में अस्थायी मज़दूरों की स्थिति अस्थायी की है, तो मौजूदा मज़दूर आन्दोलन में भी उनकी स्थिति अस्थायी की ही बनी हुई है। इसी का नतीजा है कि ऑटोमोबाइल पट्टी में अतीत के सारे ही प्रमुख स्थायी मज़दूरों के आन्दोलन कामयाब नहीं हो सके। वजह यह कि केवल 15 फ़ीसदी आबादी लड़कर जीत नहीं सकती है। साथ ही, दूसरा कारण यह रहा कि मज़दूरों की एकता को समूचे सेक्टर में फैलाने का काम किसी भी यूनियन ने नहीं किया। चुनावी पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने तो इस काम को रोका ही। साथ ही, अपने आपको 'सहयोग केन्द्र', 'इंक़लाबी केन्द्र' कहने वाले कुछ और संगठनों ने भी इस प्रक्रिया को लगातार बाधित किया। इन दोनों कारणों के चलते पिछले लगभग ढाई-तीन दशकों के दौरान मज़दूरों के अधिकांश संघर्ष कामयाब नहीं हो सके, और कम्पनियों के मालिकान व प्रबन्धन को सरकार के सहयोग से अपनी मनमानी करने का पूरा मौका मिला।

आगे वक्ताओं ने कहा कि यह तस्वीर तभी बदल सकती है जब अस्थायी मज़दूर अपने आपको अलग यूनियन में संगठित करें, जो एक प्लाण्ट में ही केन्द्रित न हो, बल्कि समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों को समेटती हो। आज समय की माँग है कि अस्थायी मज़दूर यानी समूची ऑटोमोबाइल पट्टी की 85 फ़ीसदी आबादी अपनी स्वतन्त्र यूनियन बनायें। अलग-अलग प्लाण्टों में भी अस्थायी मज़दूरों को अपनी अस्थायी मज़दूर यूनियनें बनानी होंगी। लेकिन अगर ऑटोमोबाइल पट्टी के अस्थायी मज़दूर अपनी एक ऐक्यबद्ध यूनियन में संगठित हो जायें, तो उनकी शक्ति का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। क्योंकि अस्थायी मज़दूरों की कोई एक कम्पनी नहीं होती; आज यहाँ हैं, तो कल वहाँ, और परसों कहीं और। दूसरी ओर, समूचे ऑटोमोबाइल पट्टी में जो लाखों युवा अस्थायी मज़दूर बेरोज़गार हैं, उनको भी किसी एक प्लाण्ट की अस्थायी मज़दूर यूनियन नहीं समेट सकती है। तीसरी बात यह कि समस्त अस्थायी मज़दूरों के ख़िलाफ़ तमाम कम्पनियाँ, उनके प्रबन्धन और सरकारी प्रशासन एकजुट होकर कार्रवाई करते हैं। ऐसे में, जब तब समूचे सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों की एकजुट एक यूनियन निर्मित नहीं होगी, तब तक प्रभावी तरीक़े से लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। इससे स्थायी व अस्थायी की एकता टूटेगी नहीं, बल्कि अन्ततः बनेगी। वैसे भी टूटती वह चीज़ ही है, जो पहले से मौजूद हो। सच यह है कि स्थायी मज़दूरों के संघर्षों का भी कोई भविष्य तभी होगा, जब अस्थायी मज़दूर अपने आपको अपनी यूनियन में संगठित करेंगे। निश्चित तौर पर, स्थायी व अस्थायी की एकता बनानी होगी। लेकिन अस्थायी मज़दूरों का एकजुट और संगठित होना इसके लिए आवश्यक है। स्थायी और अस्थायी मज़दूरों की एकता का लक्ष्य भी तभी पूरा हो सकता है। यदि अस्थायी मज़दूर समूचे सेक्टर के पैमाने पर एक यूनियन में संगठित हो जायें तो उनको रोकने वाली कोई शक्ति नहीं है। यह काम लम्बा ज़रूर है, पर इसी के ज़रिये मज़दूरों के संघर्षों को आगे बढ़ाया जा सकता है, इसी के ज़रिये प्लाण्टों में केन्द्रित लड़ाइयों को भी जीता जा सकता है और इसी प्रक्रिया में क़ानूनी लड़ाई को भी आगे बढ़ाया जा सकता है। AICWU (Automobile Industry Contract Workers Union या ऑटोमोबाइल उद्योग अस्थायी मज़दूर यूनियन) इसी दिशा में बढ़ाया गया क़दम है। AICWU समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों की एकजुट और एकमात्र यूनियन है।

अन्त में, यूनियन के प्रतिनिधियों ने आने वाले समय के प्रमुख कार्यभारों की बात करते हुए AICWU की सदस्यता को गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर खुशखेड़ा व टप्पूकड़ा तक के ऑटोमोबाइल बेल्ट में अस्थायी मज़दूरों में फैलाने, क़ानूनी प्रक्रिया के तहत ऑटोमोबाइल बेल्ट में सभी कम्पनियों द्वारा श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करते हुए स्थायी काम पर अस्थायी मज़दूरों को रखने के खिलाफ़ याचिका दायर करने, सभी अस्थायी मज़दूरों का माँगपत्रक तैयार कर क़दम-दर-क़दम आन्दोलन को आगे बढ़ाने के कार्यभारों पर चर्चा हुई। साथ ही सम्मेलन में मौजूद सभी अस्थायी मज़दूरों से यूनियन का सदस्य बनने और पूरे ऑटोमोबाइल सेक्टर की अस्थायी मज़दूरों की एकजुट यूनियन खड़ा करने के प्रयासों से जुड़ने की अपील की गयी।

अस्थायी मज़दूरों के सम्मेलन को बाधित करने के लिए पुलिस द्वारा की गयी कार्रवाई से पता चलता है कि अस्थायी मज़दूरों के एकजुट-संगठित होने के प्रयासों की शुरुआत से पुलिस प्रशासन, कम्पनियों के मालिकान और प्रबन्धन पर असर पड़ रहा है। उनका डर दिखायी दे रहा है। वे किसी भी क़ीमत पर ऑटो सेक्टर के अस्थायी मज़दूरों को एकजुट होने से रोकना चाहते हैं। इससे पता चलता है कि अगर मालिक-प्रबन्धन-प्रशासन को मज़दूरों की कार्रवाई से तक़लीफ़ हो रही है, तो लड़ाई सही दिशा में आगे बढ़ रही है। सम्मेलन के एजेण्डा के बचे हुए कार्यभारों को अगले ही दिन मज़दूरों की ऑनलाइन मीटिंग में सम्पन्न किया गया जिसमें क़रीब 50 साथी शामिल हुए।

घरेलू कामगार को मज़दूरों का दर्जा देना होगा!

● अदिति

देशभर में लाखों घरेलू कामगार हैं, लेकिन उन्हें आज तक मज़दूर का दर्जा हासिल नहीं हुआ है और न घरेलू कामगारों के लिए कोई क़ानून बना है जो उनके कार्य की स्थितियों को विनियमित करे, उनके लिए मज़दूरी की दर तय करे, उनके लिए समुचित रूप में सामाजिक सुरक्षा के इन्तज़ामात करे। कुछ राज्यों में अपने जुझारू संघर्ष की बदौलत घरेलू कामगारों ने अपने कुछेक हक़-अधिकार हासिल किये हैं, लेकिन ज़्यादातर राज्यों में आज भी घरेलू कामगारों की स्थिति दयनीय है।

हाल ही में 29 जनवरी को सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "घरेलू कामगारों को सुरक्षात्मक क़ानून के अभाव में दुर्व्यवहार और यातना का सामना करना पड़ता है।" इसे दुरुस्त करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र सरकार को घरेलू कामगारों के अधिकारों की रक्षा हेतु क़ानून बनाने के विचार के लिए समिति गठन करने के निर्देश दिया है। साथ ही सुप्रीम कोर्ट ने इस पैनल को छह महीने के भीतर रिपोर्ट देने के आदेश दिये हैं। लेकिन यह धरातल पर कितना लागू होगा यह भी अहम सवाल है क्योंकि इससे पहले भी अगस्त 2017 में सर्वोच्च न्यायालय ने घरेलू कामगारों को असंगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्षा एक्ट के तहत सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए गठित किये गये बोर्ड को अवस्थिति रिपोर्ट सौंपने के लिए निर्देश दिये थे। लेकिन इस दिशा में आज तक किसी भी राज्य सरकार ने कोई भी क़दम नहीं उठाया है।

आज घरेलू कामगारों के हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं। देशभर में घरेलू कामगारों के साथ शोषण उत्पीड़न की घटनाओं में लगातार इज़ाफ़ा होता जा रहा है। लेकिन आज तक हमारे लिए कोई क़ानून नहीं बना है।

दिल्ली में भी लाखों ऐसे पूर्णकालिक-अंशकालिक, कुशल-अर्द्धकुशल-अकुशल, स्त्री-पुरुष घरेलू कामगार हैं, जिनके न्यूनतम वेतन, काम करने की स्थितियों, सेवा शर्तों, सामाजिक सुरक्षा आदि को लेकर कोई क़ानून या कोई शासनादेश तक मौजूद नहीं है। हाडतोड़ मेहनत करने वाली यह भारी मज़दूर आबादी भयंकर ग़रीबी, ग़ुलामी, अपमान, असुरक्षा, उपेक्षा, उत्पीड़न और अनिश्चितता की ज़िन्दगी बिताने के लिए मजबूर है। तमाम सुझावों और दबावों के बावजूद केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय स्तर पर घरेलू मज़दूरों के लिए क़ानून बनाने की दिशा में अब तक कोई क़दम नहीं उठाया है। सरकार के सामने ऐसे क़ानून के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयक के दो मसौदे क्रमशः 2008 और 2010 में प्रस्तुत किये गये, पर सरकार ने उन पर कोई निर्णय नहीं लिया।

केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों द्वारा घरेलू कामगारों के हित में क़ानून बनाने के दिशा-निर्देश हेतु जो मसौदा राष्ट्रीय नीति तैयार की, उसे भी अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका। यही नहीं, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के सौवें सम्मेलन में, 2013 में घरेलू कामगारों से सम्बन्धित जो कन्वेंशन पारित हुआ, उसकी भी भारत सरकार ने अभी तक अभिपुष्टि (Ratification) नहीं की है। महाराष्ट्र, केरल, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान जैसे कुछ राज्यों की सरकारों ने शासनादेश/नोटिफ़िकेशन जारी करके घरेलू कामगारों को कुछ अतिसीमित और अपर्याप्त अधिकार दिये हैं, लेकिन दिल्ली समेत अन्य तमाम राज्यों के घरेलू कामगारों को क़ानूनी तौर पर उतना भी नहीं हासिल है। ये जो नगण्य अधिकार मिले भी हैं, वे घरेलू कामगारों और प्रगतिशील मज़दूर आन्दोलन के संघर्ष का नतीजा हैं।

जिन राज्यों में घरेलू कामगारों के लिये क़ानून बने हैं वो घरेलू कामगारों ने निरन्तर संघर्ष के दम पर लड़ कर हासिल किये हैं। महाराष्ट्र में घरेलू कामगारों के लिये जो हक़ अधिकार हासिल हुए हैं उसके पीछे हमारी बहनों का अथक संघर्ष है। 1980 में पुणे शहर में घरेलू कामगारों ने हड़ताल की, जिसमें उन्होंने वेतन बढ़ाने और बीमार पड़ने पर छुट्टी के पैसे ना काटने की माँग रखी। आगे चलकर उन्होंने 'पुणे शहर मोलकर्णी (घरेलू कामगार)' संगठन का निर्माण किया। 1980 से लेकर 1996 तक शहर के कई क्षेत्रों की सोसायटी में अपनी माँगों के लेकर हड़ताल की, फलस्वरूप आज महाराष्ट्र में काम करने वाली महिलाओं की स्थिति अन्य राज्यों से बेहतर है।

घरों में काम करने वाली महिलाओं की श्रमशक्ति की एक बड़ी आबादी बिना मज़दूर का दर्जा पाये काम करने के लिए मजबूर है। काम से जुड़े उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए आज तक कोई भी क़ानून नहीं है और जो भी थोड़ा-बहुत है भी तो वह लागू नहीं होता। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार जीविका के लिए भारत में दूसरे घरों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या करोड़ों में है। इनकी संख्या हमारे देश में तेज़ी से बढ़ रही है। संयुक्त परिवार ख़त्म हो रहे हैं। एक व्यक्ति की आय से घर चलाना मुश्किल होता जा रहा है, पति-पत्नी दोनों के ही बाहर काम करने की वजह से बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल के लिए परिवार के सदस्य मौजूद नहीं होते। ऐसे में इनकी देखभाल के लिए भी घरेलू कामगारों को काम पर रखने की ज़रूरत पड़ती है।

संघर्ष का रास्ता अख़्तियार करना होगा

देश भर में मौजूद लाखों घरेलू कामगारों के सामने आज भी यही सवाल है कि कब तक हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे? इसी के साथ केन्द्र सरकार के भरोसे बैठे रहना भी अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने के समान होगा क्योंकि केन्द्र में बैठी भाजपा सरकार का मज़दूर-विरोधी चेहरा आज किसी से छिपा नहीं है। हमें अपने संघर्ष के दम पर ही अपने हक़-अधिकार हासिल करने होंगे।

हमें भी अपने लिए संघर्ष का रास्ता चुनना होगा। कब तक हम कोठियों और महँगे फ्लैटों के धन्नासेठों व सेठानियों के शोषण-उत्पीड़न को सहते रहेंगे? आये दिन कभी किसी सोसायटी में कभी किसी सोसायटी में मार-पीट से लेकर, छेड़खानी, चोरी के आरोप से लेकर हत्या तक की घटना हमारे सामने आती है। काम पर देरी से पहुँचने पर ज़्यादा काम करवाना, जिन घरों को हम चमकाते हैं उन्हीं के शौचालयों तक का हम प्रयोग नहीं कर सकते हैं। काम करने के लिए जिन घरों में हम जाते हैं उनमें जूते, चप्पल और खाना तक हमें घर के बाहर रखने को बोल दिया जाता है। घर के अन्दर भी हम फर्श पर बैठने के लिए मजबूर होते है। जिन बिल्डिंगों में हम जाते हैं वहाँ की लिफ़्टों तक का हम इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। मज़दूरी मार लिया जाना या काट लिया जाना आम बात है। सीधे तौर पर कहा जाये तो हमारे साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है। इसका जवाब देने का और अपने श्रम अधिकारों व मानवीय अधिकारों को हासिल करने का केवल एक ही रास्ता है : हमें अपनी एकता के क़ायम करनी होगी और साथ ही अपनी यूनियन मज़बूत करनी होगी।

केरल की आशाकर्मियों का संघर्ष ज़िन्दाबाद!

नकली मज़दूर पार्टी सीपीएम और इसकी ट्रेड यूनियन सीटू का दोमुहाँपन एक बार फिर उजागर!!

● वृषाली

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन

केरल की आशाकर्मी पिछली 10 फ़रवरी से हड़ताल पर हैं। ये अपनी पिछले तीन महीनों के मानदेय व प्रोत्साहन राशि के भुगतान, मानदेय बढ़ोत्तरी, रिटायरमेण्ट सुविधाओं इत्यादि माँगों के लिए संघर्ष कर रही हैं। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' केरल की आशाकर्मियों के साथ अपनी एकजुटता ज़ाहिर करती है। इस पूरे वाक़ये ने केरल में सत्तासीन नामधारी कम्युनिस्ट पार्टी सीपीएम और इसकी ट्रेड यूनियन सीटू दोनों की कलई खोलने का काम किया है। इस नक़ली "लाल झण्डा" पार्टी की स्वास्थ्य मन्त्री के अनुसार ये आशाकर्मी व्यर्थ ही हड़ताल पर बैठी हैं। केरल में तक़रीबन 26,000 आशाकर्मी हैं। फ़िलहाल केरल सरकार की ओर से इन आशाकर्मियों को 7,000 व केन्द्र सरकार की ओर से 2,000 रुपये की मानदेय राशि दी जाती है। 9,000 रुपये के इस मामूली मानदेय के लिए एक माह में कई तरह के काम पूरे करने होते हैं। सभी काम पूरे न होने की सूरत में न्यूनतम मानदेय राशि 5,500 तक भी चली जाती है। प्रति बच्चा टीके के लिए प्रोत्साहन राशि महज़ 20 रुपये तय है। इसके अलावा केरल सरकार ने राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत आशाकर्मियों को "शैली" ऐप पर जीवनशैली सम्बन्धित बीमारियों का डेटा फ़ीड करने का काम भी सौंपा है जबकि इसके लिए आवश्यक स्मार्टफ़ोन का कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया है। मोबाइल रिचार्ज के लिए पर्याप्त राशि भी आवण्टित नहीं की जाती है। पिछले कुछ समय के दौरान हमें देश भर में स्कीम वर्करों (आँगनवाड़ी, आशा व मिड-डे-मील कर्मियों) के कई आन्दोलन देखने को मिले हैं। इसका कारण है कि स्कीम वर्करों पर कामों का बोझ लगातार बढ़ाया जा रहा है; इन स्कीमों में ज़मीनी स्तर पर काम में लगी महिलाकर्मियों का शोषण किया जाता है।

केरल के मामले ने सीपीएम और सीटू की असलियत को भी उजागर कर दिया है। सीटू केरल में सत्तारूढ़ मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) की जेबी ट्रेड यूनियन है। यह यूनियन देश के अलग-अलग हिस्सों में तो स्कीम वर्करों की हिमायती और प्रतिनिधि बनने का ढोंग करती है लेकिन असल में स्कीम वर्करों और मज़दूरों के हितों का सौदा करती है। सीटू ने किस तरह से स्कीम वर्करों के आन्दोलनों को बर्बाद करने और दलाली करने का इतिहास रचा है, वह हमने दिल्ली में चली 2015, 2017 और 2022 की तीनों हड़तालों में देखा है। यही नहीं, पूरे मज़दूर आन्दोलन में दलाली, कमीशनख़ोरी और ग़द्दारी सीटू का अतीत रहा है। सीटू और प्रशासन का चोली-दामन का साथ सभी हड़तालों में नज़र आ जाता है। आन्दोलनों के प्रति दुष्प्रचार करना, प्रशासन और सरकार के साथ गठजोड़ करना, आन्दोलन के नेतृत्व को बरख़ास्त करवाना — सीटू के यही काम रहे हैं! केरल में जारी आशाकर्मियों की हड़ताल के बारे में यहाँ की सरकार व प्रशासन यही रवैया अपना रहे हैं। केरल सरकार आशाकर्मियों की माँगों को अनसुना ही नहीं कर रही है बल्कि सीपीएम के केन्द्रीय कमिटी मेम्बर इलामाराम करीम ने तो सीपीएम के मुखपत्र में इस आन्दोलन को बदनाम करने के लिए एक पूरा लेख ही लिख डाला है! इसी सीपीएम से सम्बद्ध 'ऑल इण्डिया फ़ेडरेशन ऑफ आशा वर्कर्स' (सम्बद्ध सीटू) ने नवम्बर 2024 में नियमितीकरण, 26,000 रुपये वेतन और सामाजिक सुरक्षा की माँगों पर दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर देशव्यापी प्रदर्शन किया था लेकिन जिस राज्य में लम्बे समय से सीपीएम ख़ुद सत्तारूढ़ है वहाँ इन्हीं माँगों को उठाने वाली आशाकर्मियों को सरकार न सिर्फ़ अनदेखा कर रही है बल्कि सरकार इनकी हड़ताल को अराजकतावादी तत्वों की साज़िश कहकर कलंकित कर रही है! 20 फ़रवरी को सीटू की ऑल इण्डिया फ़ेडरेशन ऑफ़ आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन का राष्ट्रिय अधिवेशन चल रहा था। इस अधिवेशन में भी सीटू आँगनवाड़ी कर्मियों के लिए भी वही माँगें उठा रही थी जो केरल सरकार को वहाँ की आशाकर्मियों को देते नहीं बन रहा! इसे दोमुँहेपन की इन्तहा नहीं तो और क्या ही कहें?! संशोधनवाद और संसदवाद की दलदल में धँसी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) से इससे ज़्यादा की उम्मीद भी नहीं की जा सकती है।

केरल में चल रहे आशाकर्मियों के आन्दोलन ने एक बार फ़िर से सीपीएम और सीटू जैसे ग़द्दारों को बेपर्द करने का काम किया है। आज देश भर में आन्दोलनरत स्कीम वर्करों के बीच इन जैसे विभीषणों, जयचन्दों और मीर जाफ़रों की सच्चाई उजागर करना बेहद ज़रूरी कार्यभार बनता है। किसी भी जुझारू आन्दोलन के लिए बुनियादी ज़रूरत है एक इन्क़लाबी और स्वतन्त्र यूनियन का गठन। सभी चुनावबाज़ पार्टियों से स्वतन्त्र यूनियन ही बिना किसी समझौते के किसी संघर्ष को उसके सही मुक़ाम तक पहुँचाने में सक्षम हो सकती है। केरल की आशाकर्मियों को हमारी दोस्ताना सलाह है कि वे हमारी बातों पर ज़रूर ग़ौर करें। 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' केरल की आशाकर्मियों की माँगों का पुरज़ोर समर्थन करती है। बकाये के भुगतान; मानदेय बढ़ोत्तरी, सामाजिक सुरक्षा और नियमितीकरण की माँगें हमारी बेहद ही बुनियादी और ज़रूरी माँगें हैं। दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी अपनी जायज़ माँगों के लिए संघर्षरत केरल की जुझारू आशाकर्मी बहनों के साथ हर क़दम पर खड़ी हैं।

दिव्य महाकुम्भ में भव्य भ्रष्टाचार

● चन्द्रप्रकाश

हर गुज़रते दिन के साथ फ़ासीवादी मोदी-योगी सरकार का मज़दूर विरोधी और जन विरोधी चरित्र बेनक़ाब होता जा रहा है। इस साल इलाहाबाद में लगे कुम्भ के प्रचार पर योगी सरकार द्वारा हज़ारों करोड़ रुपये स्वाहा कर दिया गया। करोड़ों की लागत से टेण्ट सिटी बसायी गयी। दिव्य-भव्य-साफ़-स्वच्छ कुम्भ का ख़ूब ढिंढोरा पीटा गया। इस दिव्यता, भव्यता, स्वच्छता की सच्चाई तो कुम्भ के दौरान ही सामने आने लगी थी। लेकिन अब जबकि कुम्भ ख़त्म हो चुका है तब शासन-प्रशासन और ठेकेदारों के नापाक गठजोड़ के किस्से भी बाहर आने लगे हैं। जिनके दम पर टेण्ट सिटी जगमगा रही थी आज उनके घरों में अँधेरा है। जो मज़दूर व मेहनतकश बिना रुके, बिना आराम किये साफ़-स्वच्छ कुम्भ बनाने के लिए लगे रहे आज उनको अपने मेहनताने के लिए भी प्रदर्शन करना पड़ रहा है और कहीं कोई सुनवाई तक नहीं है। पूरे कुम्भ के दौरान योगी सरकार अपने को मज़दूर हितैषी दिखाने के लिए मज़दूरों के साथ खाना खाने, मज़दूरों पर पुष्प वर्षा करवाने जैसी नौटंकी करती रही। यहाँ तक की कुम्भ के आख़िरी दिन योगी सरकार द्वारा सफाईकर्मियों को 10,000 बोनस का सपना दिखाया गया। लेकिन सच्चाई कुछ और ही है। कुम्भ मेले में काम करने वाले सैकड़ों सफाई कर्मचारियों को मेला प्रशासन और नगर निगम द्वारा पिछले तीन महीने से वेतन नहीं दिया गया। सुनवाई के लिए तमाम दफ़्तरों का चक्कर काटने के बाद अन्ततः मजबूर होकर इन सफाई मज़दूरों ने इलाहाबाद-वाराणसी राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित शास्त्री ब्रिज पर चक्का जाम कर दिया। यही नहीं महाकुम्भ मेला क्षेत्र के वार्ड 16 (तेलियरगंज और शान्तिपुरम) में ठेके पर लगायी गयी 18 महिला कर्मचारियों को तीन सप्ताह तक कार्य कराने के बाद काम से निकाल दिया गया और अभी तक उनका भुगतान नहीं किया गया है। इसी तरह का प्रदर्शन कुछ दिनों पहले सेक्टर 6,7,8, 9 के कर्मचारियों ने खाने-पीने और रहने की कोई व्यवस्था न होने को लेकर किया था। योगी सरकार की लफ़्फ़ाज़ियों को गोदी मीडिया द्वारा हवा देने का काम किया जाता रहा है। लेकिन यही मीडिया यह नहीं बताती कि कुम्भ में काम करने वाले ज़्यादातर सफाईकर्मी ठेके पर रखे गये थे। वास्तव में योगी सरकार द्वारा बोनस की जो घोषणा की गयी है वह कभी भी इन सफाईकर्मियों तक पहुँचेगा ही नहीं। सच्चाई यह है कि इस पूरे बजट का नेताओं-प्रशासनिक अधिकारियों और ठेकेदारों के बीच बन्दरबाँट होने वाला है।

योगी सरकार ने 27 फ़रवरी को 1500 सफाई कर्मचारियों को लगाकर 10 किमी का स्वच्छता अभियान चलवाया। इनके जी-तोड़ मेहनत के बदौलत योगी सरकार ने अपना नाम गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज़ करवाकर वाहवाही तो लूट ली लेकिन ख़ून पसीना बहाकर काम करने वाले इन कर्मचारियों को अभी तक मेहनताना नहीं मिला। कुम्भ में सफाई के काम में लगे अधिकांश मज़दूर दूर-दराज के जिलों से आये थे और कुछ अन्य राज्यों से भी। लगातार तीन महीनों से ये मज़दूर अपने घर-परिवार से दूर रहकर अपने परिवार के भरण-पोषण के ख़र्च जुटाने के लिए कुम्भ में साफ़-सफाई का काम कर रहे थे। अब तीन महीने से मज़दूरी न मिलने के कारण परिवार समेत भूखों मरने को मजबूर हैं। आर्थिक शोषण के साथ-साथ इन सफाईकर्मियों को पुलिस प्रशासन का दमन, अपमान से लेकर मारपीट तक सहना पड़ा है।

25 जनवरी को कुम्भ मेला क्षेत्र के सेक्टर-2 में कुछ पुलिस के गुण्डों ने वृद्ध पूरन सहित अन्य कई सफाई कर्मचारियों की बर्बर पिटाई की। कुम्भ के सेक्टर मेडिकल ऑफिसर डॉ. सन्तोष मिश्रा का बयान है कि "सफाई कर्मियों को पुलिस के द्वारा पीटने की यह पहली घटना नहीं है। अब तक चार बार पुलिसकर्मी इनकी पिटाई कर चुके हैं।"

कुम्भ में ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं जिससे योगी-मोदी का मज़दूर-विरोधी चरित्र उजागर होता है। इसमें नाबालिग मज़दूर भूरेलाल की हत्या से लेकर पाइपलाइन बिछाने के काम में लगे मज़दूरों के पैर कटने जैसी कई घटनाएँ शामिल हैं। इसकी विस्तार से चर्चा हमने 'मज़दूर बिगुल' के फ़रवरी अंक में की थी। मज़दूरों के साथ होने वाली ये घटनाएँ हर बार कुम्भ या अर्द्धकुम्भ के आयोजन में होती हैं लेकिन फ़ासिस्ट इन घटनाओं को छुपाने के लिए ढोंग रचते हैं और खुद को मज़दूर हितैषी दिखाने की कोशिश करते हैं। पिछली बार के अर्द्ध कुम्भ (25 फ़रवरी, 2019) में मोदी ने कुछ सफ़ाई कर्मचारियों का पैर धुलकर मीडिया में बयान दिया कि उसे सन्तोष प्राप्त हुआ है। लेकिन उन सफ़ाई कर्मचारियों की ज़िन्दगी पिछले पाँच सालों में बद से बदतर हो गयी है। उनके पास रहने के लिए कोई पक्का मकान न होने के कारण वे छोटी-छोटी झुग्गियों में रहने को अभिशप्त हैं।

आज हम मज़दूर यह जानते हैं कि हम ही पूरे शहर को साफ़ करते हैं लेकिन सरकार को हमारी यह झुग्गी बस्तियाँ गन्दगी का ढेर नजर आती हैं इसलिए किसी बड़े कार्यक्रम के आयोजन पर इन झुग्गी बस्तियों को ढँक दिया जाता है। इस बार भी महाकुम्भ के आयोजन पर यही हुआ था। संगम के किनारे लगे हुए सारी झुग्गियों को लोहे के चद्दरों से ढँक दिया गया था।

सिर्फ़ इलाहाबाद ही नहीं बल्कि पूरे देश में स्वच्छ भारत अभियान जैसी योजनाओं के तहत इन सफाई कर्मचारियों का भयंकर शोषण जारी है। इन कर्मचारियों से दिन-रात मेहनत तो करवा ली जाती है लेकिन उन्हें समय से तय मज़दूरी नहीं मिलती। ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए सफाई का कॉण्ट्रैक्ट लेने वाली कम्पनियों और सरकारी निगमों की तरफ से सफाई के लिए ज़रूरी उपकरण न उपलब्ध करवाये जाने के कारण हर साल सैकड़ों सफ़ाई कर्मचारियों की मौत सीवर व सेप्टिक टैंकों में सफ़ाई के दौरान दम घुटने से हो जाती है। 9 मार्च को मुम्बई के नागपाड़ा मिंट रोड पर गुड लक मोटर ट्रेनिंग स्कूल के पास एक निर्माणाधीन इमारत में पानी के टैंक की सफाई के दौरान दम घुटने से 5 कर्मचारियों (19 वर्षीय हसीपाल शेख़, 20 वर्षीय राजा शेख़, 36 वर्षीय जियाउल्ला शेख़, 38 वर्षीय इमांडू शेख़ और 31 वर्षीय पुरहान शेख़) की मौत हो गयी।

'हिन्दू राष्ट्र' के कुम्भ के धार्मिक आयोजन में मज़दूरों और मेहनतकशों की यही जगह है क्योंकि स्वयं इनके 'हिन्दू राष्ट्र' में मज़दूरों की यही जगह है, चाहे उनका धर्म या जाति कुछ भी हो। धन्नासेठ, अमीरज़ादे, ऐय्याश धनपशु अपना पापनाश कर सकें, उसके लिए मज़दूरों को अपनी हड्डियाँ-हाड़ गलाना ही होगा, चाहे उनका ही नाश क्यों न हो जाये! मोदी-योगी के चमचे बाबा धीरेन्द्र शास्त्री के अनुसार, अमीरज़ादों के पापनाश की नौटंकी में अगर मज़दूर और आम जनता मरते हैं, तो उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है! जो मज़दूर संघ परिवार, मोदी और योगी के 'हिन्दू राष्ट्र' में दास और सेवक जैसी हालत में अपना शोषण, उत्पीड़न और दमन करवाने को मोक्ष समझते हैं, उनसे हम क्या ही कह सकते हैं। लेकिन जिन मज़दूरों के भीतर आत्मसम्मान, गरिमा और अपने अधिकारों का बोध है, वे जानते हैं कि इस 'हिन्दू राष्ट्र' की सच्चाई केवल मालिकों, धनपशुओं, ठेकेदारों, व्यापारियों की लूट के तहत देश के मेहनतकश अवाम को निचोड़ने की व्यवस्था है। इसपर ही धर्म की चादर चढ़ाई जाती है, ताकि हम इस लूट और शोषण को इहलोक में अपना कर्म मानकर चुपचाप इसे सहते रहें, इस आशा में कि परलोक में मोक्ष प्राप्त होगा! आपको समझ लेना चाहिए कि ये बातें केवल आपको बेवकूफ़ बनाने का तरीक़ा हैं।

फ़ासीवाद और पूँजीवाद हम मज़दूरों को शोषण, उत्पीड़न ही दे सकता है। हम इस चीज़ को समझ ना सकें इसके लिए भारतीय मज़दूर संघ और संघ के अन्य संगठन हम मज़दूरों को आपस में धर्म के नाम पर बाँटने में लगे हैं। हमें यह हकीकत समझने की ज़रूरत है कि देश भर में हर साल सीवर में होने वाली मौतें हों, आत्महत्या करने वाले मज़दूर हों या समय से तय वेतन न पाने वाले कर्मचारी हों सभी परेशान हैं। चाहे वे किसी भी जाति-धर्म से आते हों। इसलिए हमें आपस में बँटकर लड़ने के बजाय एकजुट होकर उजरती श्रम की लूट पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था और इस फ़ासीवादी सत्ता के खिलाफ लड़ने की ज़रूरत है।

अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस के अवसर पर आँगनवाड़ीकर्मियों ने मनाया 'संघर्ष का उत्सव'!

(पेज 3 से आगे)

हम लड़ने की ज़िद और जद्दोजहद को किसी भी सूरत में न छोड़ें। उन्होंने दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों के अतीत के संघर्षों पर बात करते हुए यह भी कहा कि आँगनवाड़ी कर्मियों की लड़ाई मज़दूर वर्ग की सत्ता को स्थापित करने की लड़ाई का ही एक हिस्सा है।

उन्होंने आगे कहा कि आज आँगनवाड़ीकर्मी देशभर में कर्मचारी के दर्जे का हक़ हासिल करने के लिए संघर्षरत हैं। यही कारण है कि सुप्रीम कोर्ट से लेकर गुजरात हाई कोर्ट ने आँगनवाड़ी कर्मियों के पक्ष में फ़ैसले सुनाये हैं। इस संघर्ष में दिल्ली की महिलाकर्मी भी शामिल हैं। कर्मचारी के दर्जे के अधिकार के इस संघर्ष में 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' एक नये अध्याय की शुरुआत करने जा रही है। इस मुद्दे पर यूनियन की तरफ़ से जल्द ही दिल्ली हाई कोर्ट में एक केस दायर किया जायेगा। अदलात में संघर्ष के साथ सड़कों का संघर्ष भी इस मसले पर जारी रहेगा।

उत्सव में कई गीत भी पेश किये गये। सांस्कृतिक कार्यक्रम के तहत आँगनवाड़ी कर्मियों की नाट्य टोली 'अपराजिता' ने सफ़दर हाशमी के नाटक से प्रेरित **'कहानी एक आँगनवाड़ी औरत की'** का मंचन किया। इस नाटक में मुख्यतः आँगनवाड़ी कर्मी शामिल थीं, जिन्होंने बेहद कम समय में इसे तैयार किया। सांस्कृतिक कार्यक्रम के तहत पेश किये गये गीतों ने आँगनवाड़ी कर्मियों के ज़ेहन में पुरानी यादें भी ताज़ा कीं और भविष्य के संघर्ष के लिए ऊर्जा का भी संचार किया।

'संघर्ष के उत्सव' में किताबों का एक स्टॉल मौजूद था। इस स्टॉल पर तमाम तरह की प्रगतिशील किताबें स्त्रियों और उनके साथ आये बच्चों के लिए उपलब्ध थीं। इसके साथ ही एक कोना बच्चों को समर्पित था जहाँ उनके लिए चित्रकारी के साधन और खिलौने मौजूद थे।

कार्यक्रम के समापन से पहले महिलाकर्मियों ने स्त्री मुक्ति के लिए उठी आवाज़ को बुलन्द करते हुए एक रैली का आयोजन किया। दिल्ली की सड़कों को एक बार फिर लाल रंगते हुए महिलाओं ने संघर्ष को और मजबूत करने का प्रण लिया।

रैली के बाद सामूहिक भोज के दौरान महिलाकर्मियों ने धर्म और जाति जैसे बन्धनों को तोड़कर एक साथ खाना खाया। इस दौरान आँगनवाड़ी कर्मियों की 2022 की हड़ताल पर बनी एक फ़िल्म **'जब शहर लाल हो गया'** भी दिखायी गयी। यह फ़िल्म 'प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग' के कलाकार साथियों ने बनायी है। 'प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग' दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मियों के संघर्ष में 2022 में भी शामिल था। यह फ़िल्म न केवल हड़ताल के दौरान की घटनाओं को दर्शाती है बल्कि महिलाओं के जुझारूपन, उनके संघर्ष के जज़्बे को भी बारीक़ी से पकड़ती है। किस तरह हड़ताल और संघर्ष के दौरान महिलाकर्मियों की ज़िन्दगी में बदलाव आये, यह फ़िल्म उस पर भी रोशनी डालती है।

कुसुमपुर पहाड़ी में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर सांस्कृतिक संध्या : एक शाम संघर्षों के नाम

● लता

मुझमें साँस लेती है आज़ादी।
मेरा ज़ेहन सपनों की वादी है।
बग़ावत मेरी धमनियों-शिराओं में
खून बनकर बहती है।
कितनी-कितनी हारों के बाद भी
दिल मेरा तैयार नहीं छोड़ने को
लड़ते रहने की ज़िद।
कई बार काटे गये मेरे पंख
पर रात भर में ही
वे फिर उग आये
और मैं निकल पड़ी खुले आकाश में
तूफ़ानों के प्रदेश की यात्रा पर।

दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की ओर से 8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर कुसुमपुर पहाड़ी के मद्रासी मन्दिर पार्क में सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। कामगार स्त्री दिवस के महत्व और आज के दौर में इसकी प्रासंगिकता को लेकर दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की ओर से 4 मार्च से कुसुमपुर पहाड़ी की गलियों में अभियान चलाया जा रहा था और मज़दूरों-मेहनतकशों को इस अवसर पर होने वाले सांस्कृतिक संध्या की सूचना दी जा रही थी। कुसुमपुर के स्त्री व पुरुष मज़दूरों को बताया गया कि कार्यक्रम में नाटक और गीतों के साथ दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की माँगों और कामों पर भी चर्चा होगी। अभियान के दौरान मज़दूरों ने कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सहयोग भी किया।

8 मार्च शाम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से आयी नाटक की टोली ने गलियों में घूम-घूम कर नाटक का प्रचार किया। शाम होते-होते कार्यक्रम स्थल पर लोगों की अच्छी तादाद इकट्ठा हो गयी थी। दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की ओर से मंच का संचालन करते हुए लता ने कार्यक्रम में आये लोगों का स्वागत किया। कार्यक्रम की शुरुआत शशि प्रकाश के लिखे गीत 'दुनिया के हर सवाल के हम ही जवाब हैं' से हुई। दिल्ली विश्वविद्यालय से आयी 'दिशा' की सांस्कृतिक टीम ने यह गीत प्रस्तुत किया। गीत के बाद दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की ओर से लता ने मौजूद लोगों को 8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर स्त्री दिवस के इतिहास से अवगत कराया। लता ने बताया कि यह पैसेवालों की दुनिया के "मदर्स डे" और "फादर्स डे" जैसे तमाम सस्ते बाज़ारू 'डेज़' की तरह "वुमन्स डे" भी एक अन्य "डे" नहीं है। यह असल में अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस है और इसका इतिहास मज़दूर स्त्रियों के ख़ून, क़ुर्बानियों, जज़्बे और जद्दोजहद से लिखा गया था। 1857 में न्यूयॉर्क शहर के कपड़ा मिलों में काम करने वाली स्त्रियों ने बेहद कम मज़दूरी, लम्बे काम के घण्टों और काम की ख़तरनाक परिस्थितियों के ख़िलाफ़ अपने हक़ों के लिए हड़ताल की शुरुआत की। पुलिस ने इन स्त्रियों का बर्बर दमन किया। लेकिन जुझारू और कर्मठ स्त्रियाँ दूनी मेहनत से अपने संघर्ष में जुट गयीं। वे 6-6 इंच मोटी बर्फ़ से ढँकी सड़कों पर सुबह-सुबह हड़ताल की पिकेटिंग के लिए निकल जाया करती थीं। दो साल बाद इन औरतों ने अपनी यूनियन बनायी। इस दौरान स्त्री मज़दूरों का आन्दोलन यूरोप में भी ज़ोर पकड़ रहा था। 1904 में रेडीमेड मिल व जूता बनाने वाली फैक्ट्री में काम करने वाली औरतों ने काम के घण्टे 16 से 10 करने की माँग को लेकर आन्दोलन किया। जिसमें कई स्त्रियों को जेल जाना पड़ा। लेकिन इसके बाद भी संघर्षों और लड़ाइयों का सिलसिला जारी रहा। 1908 में न्यूयॉर्क में सुई उद्योग की स्त्री मज़दूरों ने वेतन बढ़ाने की माँग को लेकर प्रदर्शन किया। 30,000 हज़ार से अधिक मज़दूर औरतें एक बार फिर न्यूयॉर्क शहर की सड़कों पर हड़ताल के लिए उतरीं। इसबार इनकी माँगों में मतदान करने के अधिकार की माँग भी शामिल थी। विश्व के अलग-अलग कोनों में मज़दूर औरतों का आन्दोलन और उनकी राजनीतिक भूमिका तेज़ी से बढ़ रही थी। 1910 में कोपेनहेगन में आयोजित मज़दूर वर्ग की पार्टियों के दूसरे अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में जर्मनी की कम्युनिस्ट नेता क्लारा ज़ेटकिन ने 8 मार्च को अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर स्त्री दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव रखा जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। 8 मार्च 1917 को ही रूस में निरंकुश ज़ारशाही से रूसी मज़दूर "रोटी, शान्ति और आज़ादी" की माँग करते सड़कों पर उतरे जिसमें बड़ी संख्या में मज़दूर औरतें थीं। ज़ार ने पुरुषों, औरतों और बच्चों सबका बर्बर दमन किया। मज़दूरों और आम मेहनतकश में इस दमन से भयंकर आक्रोश फैला और वह ज़ारशाही को उखाड़ फेंकने को सड़कों पर उतरे। 8 मार्च की इस घटना को रूसी क्रान्ति की शुरुआत कहते हैं। लम्बे समय से रूस में ज़ार के शोषण और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ मज़दूरों और आम मेहनतकशों को क्रान्तिकारी ताक़तें संगठित कर रही थीं। इनमें सबसे अग्रिम भूमिका बोल्शेविक पार्टी की थी। बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में ही हज़ारों-हज़ार स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर ज़ारशाही को समाप्त कर सर्वहारा सत्ता स्थापित करने के लिए संघर्षरत थीं। मज़दूरों ने 7 नवम्बर 1917 को (रूसी कैलेण्डर के अनुसार 25 अक्टूबर) महान रूसी सर्वहारा क्रान्ति को साकार किया। इस तरह ही चीन में हुई मज़दूर क्रान्ति को सफल बनाने में चीनी स्त्रियाँ क्रान्ति की अगली क़तारों में खड़ी थीं।

आगे कार्यक्रम में बताया गया कि यह दिन हम मज़दूरों का त्योहार है। मज़दूर-मेहनतकश आबादी के लिए उनके संघर्ष और जीत ही असल उत्सव और त्योहार होते हैं और इन्हें मनाने का मतलब होता है अपने इतिहास से सीखकर अपने आज और भविष्य के संघर्षों की तैयारी करना। औरतों के संघर्षों को याद करते हुए 'दिशा' की सांस्कृतिक टीम की अगली प्रस्तुति थी "महिलाएँ गर उठी नहीं तो ज़ुल्म बढ़ता जायेगा"।

ज्ञात हो कि पिछली 16 फ़रवरी को कुसुमपुर में दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन के इकाई का गठन हुआ था। कार्यक्रम में बताया गया कि घरों में काम करने वाली कई स्त्रियों ने यूनियन की सदस्यता ली है। लता ने बताया कि 29 जनवरी 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि देश में घरेलू मज़दूरों को भयंकर असुरक्षित परिस्थितियों में घोर शोषण और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। इसके पीछे की सबसे अहम वजह है घरेलू कामगारों को मज़दूर का दर्ज़ा हासिल नहीं होना। इस कारण ही जो कुछ भी मौजूदा श्रम क़ानून हैं घरेलू कामगार उनसे बाहर हो जाते हैं, जैसे न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम 1948, मज़दूरी भुगतान अधिनियम 1936, समान मज़दूरी अधिनियम 1976, काम की जगह पर स्त्रियों के साथ यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013, आदि। सुप्रीम कोर्ट ने मोदी सरकार को जल्द से जल्द एक कमेटी बनाने का निर्देश दिया है। इस कमेटी में श्रम एवम् रोज़गार मंत्रालय, सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण मंत्रालय, महिला एवम् बाल विकास मंत्रालय और क़ानून एवम् न्याय मंत्रालय को शामिल करने का निर्देश दिया है। कमेटी का काम होगा 6 महीने के अन्दर घरेलू कामगारों के लिए उनके व्ययसाय के अनुकूल श्रम क़ानून बनाने और मौजूदा श्रम क़ानूनों के दायरे में उन्हें शामिल करने की सिफ़ारिशें पेश करना। इसके अलावा सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि घरेलू मज़दूरों के साथ न्यायपूर्ण श्रम व्यवहार हो इसके लिए भारत को अन्तरराष्ट्रीय श्रम मानकों का पालन करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने इसके लिए अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के घरेलू कामगार कन्वेंशन 2011 (संख्या 189) का हवाला दिया है। सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश को देखते हुए घरेलू कामगारों को घरेलू कामगारों के समूचे क्षेत्र को विनियमित करवाने के लिए क़ानून बनवाने के अपने संघर्ष को और तेज़ करने की ज़रूरत है। कार्यक्रम में दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन के साथियों ने उपस्थित मज़दूर स्त्री और पुरुषों से यूनियन में संगठित होने का आह्वान किया। मज़दूरों को समझना होगा कि सुप्रीम कोर्ट का यह आदेश अपने आप लागू नहीं होगा। इसे लागू करवाने के लिए घरेलू कामगारों को बड़ी संख्या में यूनियन के बैनर तले संगठित हो कर सड़कों पर उतरना होगा।

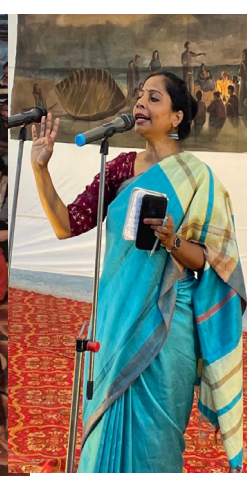

यूनियन पर बातचीत के बाद अगले कार्यक्रम के तौर पर 'दिशा' की नाट्य टोली ने सफ़दर हाशमी के नाटक 'राजा का बाजा' का मंचन किया। दर्शकों ने नाटक को बहुत सराहा। नाटक के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय से आयी 'दिशा' की सांस्कृतिक टीम ने "कदम मिलाओ साथियो" गीत प्रस्तुत किया। गीत के बाद अगल नाटक "तमाशा" दिशा, जेएनयू की नाट्य टोली ने ही प्रस्तुत किया। दर्शकों ने इस नाटक को विशेष तौर पर सराहा। मदारी और जमूरे के हर मज़ाक़ पर जनता ने खूब आनन्द लिया।

इसके बाद दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन से लता ने लोगों को बताया कि हमें पूँजीपतियों की चाकरी करने वाली तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के फ़रेब को समझने की ज़रूरत है और इनमें से सबसे अधिक भाजपा की ज़हरीली राजनीतिक को समझने की ज़रूरत है क्योंकि भाजपा और संघ परिवार मज़दूर-मेहनतकशों की एकता को धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्र और क्षेत्र के नाम पर तोड़ते हैं। जब भी मज़दूर-मेहनतकश रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन, आवास या अपने राजनीतिक माँगों को लेकर उतरता है तो भाजपा की 'फूट डालो और राज करो' की नीति हमारे बीच बँटवारा पैदा कर हमारी लड़ाई को कमज़ोर बनाती है। हमें इस फ़ासीवादी राजनीति को समझना होगा और अपने हक़ अधिकार हासिल करने के लिए एकजुट और संगठित होना होगा।

कार्यक्रम की आख़िरी प्रस्तुति थी "यूनियन गीत" जिसे दिशा, डीयू की सांस्कृतिक टोली ने पेश किया। मौजूद सभी लोगों ने दोनों नाटकों और गीतों को सराहा उनका खुलकर मज़ा लिया। साथ ही 8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के इतिहास को ध्यान से सुना। मौजूद मज़दूर स्त्रियों और पुरुषों ने यूनियन बनाने और संगठित होकर अपने हक़ अधिकार के लिए संघर्ष करने की बात पर सहमति जतायी। बुलन्द नारों के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

तेलंगाना में जातिगत जनगणना : युवाओं को रोज़गार देने में फिसड्डी रेवन्त रेड्डी सरकार का नया शिगूफ़ा

● आनन्द

तेलंगाना में रेवन्त रेड्डी नीत कांग्रेस सरकार ने हाल ही में तेलंगाना सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, रोज़गार और राजनीतिक सर्वेक्षण (संक्षेप में जातिगत जनगणना) का काम सम्पन्न किया है जिसका घोषित उद्देश्य तेलंगाना की क़रीब साढ़े तीन करोड़ आबादी की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, रोज़गार सम्बन्ध एवं राजनीतिक व जाति सम्बन्धित स्थिति का समग्रता में जायज़ा लेना है। इसका इस्तेमाल तेलंगाना में पिछड़ी जातियों के आरक्षण को बढ़ाने के औचित्य प्रतिपादन के लिए किये जाने की सम्भावना है। गत 4 फ़रवरी को इस सर्वेक्षण की एक संक्षिप्त रिपोर्ट तेलंगाना की विधानसभा में प्रस्तुत की गयी। उसके बाद से राज्य में राजनीतिक तापमान अचानक बढ़ गया है क्योंकि सभी बुर्जुआ पार्टियाँ पिछड़ी जातियों की वास्तविक प्रतिनिधि होने का दावा ठोंक रही हैं। परन्तु इस राजनीतिक उठापठक में बेरोज़गारी की असली समस्या को पृष्ठभूमि पर धकेल दिया जा रहा है।

बिहार व कर्नाटक के बाद तेलंगाना जातिगत जनगणना कराने वाला तीसरा राज्य बन गया है। कांग्रेस पार्टी ने ऐसी ही क़वायद राष्ट्रीय स्तर पर भी कराने की माँग उठायी है। कई लोग जातिगत जनगणना को मण्डल 2.0 की संज्ञा दे रहे हैं और इसे हिन्दुत्व की राजनीति के ख़िलाफ़ तुरुप का पत्ता बता रहे हैं। इस लेख में आगे **हम देखेंगे कि भाजपा व संघ परिवार से लड़ने की यह रणनीति क्यों कारगर साबित नहीं होने वाली है।**

तेलंगाना की जातिगत जनगणना में यह तथ्य सामने आया है कि राज्य की आबादी का क़रीब 56 प्रतिशत पिछड़ी जातियों से आता है जिसमें मुस्लिम समुदाय की पिछड़ी जातियाँ भी शामिल हैं। ग़ैर-मुस्लिमों में पिछड़ी जातियों की आबादी कुल आबादी का लगभग 46 प्रतिशत है। इस डेटा के आधार पर तेलंगाना की कैबिनेट ने सार्वजनिक शिक्षा व सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के कोटा को 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत करने के बिल को मंज़ूरी दे दी है।

विभिन्न बुर्जुआ पार्टियाँ तथा जाति-आधारित संगठनों ने चुनावी गणित के मद्देनज़र जातिगत जनगणना को लेकर आपत्तियाँ उठायी हैं। इस जनगणना की पद्धति को लेकर भी तमाम सवाल उठाये जा रहे हैं। रेवन्त रेड्डी सरकार के ऊपर आरोप लगाये जा रहे हैं कि उसने जातिगत जनगणना में पिछड़ी जातियों की संख्या जानबूझकर कम दिखायी है। बीआरएस यह आरोप लगा रही है कि जनगणना में उच्च जाति की संख्या को बढ़ाचढ़ाकर दिखाया गया है। जबकि भाजपा का आरोप यह है कि सरकार मुस्लिमों का तुष्टीकरण करने के लिए उनमें पिछड़ी जातियों की संख्या को बढ़ाचढ़ाकर पेश कर रही है।

सवाल यह उठता है कि **जातिगत जनगणना के मुद्दे पर चल रही राजनीति पर मज़दूर वर्ग का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए।** इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश के अन्य भागों की ही तरह तेलंगाना में भी पिछड़ी जातियों की बहुत बड़ी संख्या देश के मज़दूर वर्ग व मेहनतकश जनता का हिस्सा है। परन्तु सवाल यह भी है कि पिछड़ी जातियों के आरक्षण को बढ़ाने के बाद भी पिछड़ी जातियों के कितने प्रतिशत लोगों का लाभ होने वाला है। तेलंगाना में कुल 162 ऐसी जातियाँ हैं जिन्हें सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़ा माना गया है। किसी भी अन्य जातीय समुदाय की ही तरह ये जातियाँ भी वर्गों में विभाजित हैं। इनमें से बेहद छोटी आबादी ऐसी है जो अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिला पाती है और हैदराबाद में अशोक नगर, आरटीसी क्रॉस रोड तथा दिलसुखनगर जैसे इलाक़ों में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए भेज पाती है, जहाँ कोचिंग सेण्टर, लायब्रेरी, रीडिंग रूम और किराये के घर तथा पेइंग गेस्ट जैसी सुविधाएँ बेहद मँहगे दामों पर उपलब्ध हैं।

पिछड़ी जातियों का बहुलांश कारीगर, छोटे व सीमान्त किसान या खेतों व फ़ैक्ट्रियों में काम करने वाले मज़दूर हैं जिनके लिए सरकारी नौकरियाँ पाना आकाश कुसुम के समान है। यही नहीं, 162 पिछड़ी जातियों में मुन्नुरू कापू, मुदीराज और यादव जैसी चन्द जातियों की स्थिति, अन्य जातियों की तुलना में कहीं ज़्यादा बेहतर है। पिछड़ी जातियों के आरक्षण को बढ़ाने का असली फ़ायदा इन मुट्ठीभर जातियों में की बेहद छोटी-सी आबादी को होने वाला है। पिछड़ी जातियों की विशाल जनसंख्या के लिए इस बढ़ोत्तरी के कोई मायने ही नहीं हैं। उनके बच्चे भी बड़ी संख्या में हैदराबाद में आते हैं, परन्तु अच्छी शिक्षा व नौकरी के लिए नहीं बल्कि जीडीमेटला व गाँधीनगर जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में स्थित फ़ैक्ट्रियों में हेल्पर या वर्कर का काम करने के लिए या फिर काम की तलाश में शहर के क़रीब 200 लेबर चौकों पर खड़े होने के लिए।

पिछड़ी जातियों में से जो लोग अपने बच्चों को प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए हैदराबाद भेजने में सक्षम हैं, उस छोटे-से हिस्से को भी सरकारी नौकरी मिलने की सम्भावना बेहद कम है। मिसाल के लिए पिछले साल तेलंगाना में ग्रुप वन की 563 पोस्टों के लिए 4 लाख से ज़्यादा लोगों ने परीक्षा दी थी, यानी हर 700 उम्मीदवारों में से महज़ एक को नौकरी मिलेगी। इस प्रकार पिछड़ी जातियों को मिलने वाले आरक्षण को बढ़ा देने के बाद भी अधिकांश उम्मीदवारों के लिए सरकारी नौकरी पाने की सम्भावना बेहद कम ही रहेगी और उनकी नियति बेरोज़गारों की औद्योगिक रिज़र्व फ़ौज में शामिल रहने की ही रहेगी जिन्हें भविष्य में कम तनख़्वाह व बिना सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा वाली निजी अनौपचारिक नौकरियों के अलावा और कुछ भी नहीं मिलने वाला है।

तेलंगाना की जातिगत जनगणना को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है और ऐसी ही क़वायद राष्ट्रीय स्तर पर किये जाने की बात की जा रही है। बीएसपी के विचारक कांशीराम के नारे 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी' को एक नया रूप देते हुए राहुल गाँधी 'जितनी आबादी उतना हक़' का नारा उछाल रहे हैं। यह नारा कई स्तरों पर गुमराह करने वाला है। इस नारे के समर्थकों से यह पूछा जाना चाहिए कि **क्या वे इस देश के संसाधनों व उत्पादन के साधनों के मालिकाने पर भी यहाँ की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी को हिस्से के अनुसार हक़ दिलवाने के लिए आगे आयेंगे?** ज़ाहिरा तौर पर इसका उत्तर है, नहीं! क्योंकि राहुल गाँधी और रेवन्त रेड्डी जैसे लोग व उनके तमाम समर्थक यह मानकर चलते हैं कि देश के संसाधनों व उत्पादन के साधनों पर तो मुट्ठीभर पूँजीपतियों का ही हक़ होना चाहिए जो देश की कुल आबादी का बेहद छोटा-सा हिस्सा हैं!

अगर केवल सरकारी नौकरियों की ही बात करें तो भी चूँकि ऐसी नौकरियों की संख्या बेहद कम है और नवउदारवाद के दौर में दिन-ब-दिन कम होती जा रही है, इसलिए उत्पीड़ित समुदायों में से भी अधिकांश आबादी के लिए यह लोकलुभावन नारा बेमतलब है। तेलंगाना के मामले में हमने देखा कि 162 पिछड़ी जातियों में से अधिकांश लोगों को पिछड़ी जातियों का आरक्षण बढ़ा देने के बावजूद कोई फ़ायदा नहीं होगा, ख़ासकर तब जबकि सरकारी नौकरियों की संख्या में कोई विचारणीय वृद्धि न हो। यही बात पूरे देश के सन्दर्भ में लागू होती है। इस प्रकार समानुपातिक प्रतिनिधित्व का नारा एक छलावा है जो लोगों को उनको यह समझने से रोकता है कि उनका असली दुश्मन पूँजीवादी व्यवस्था है न कि अन्य जातियों के लोग।

जातिगत जनगणना के समर्थन में एक अन्य तर्क यह दिया जा रहा है कि इससे भाजपा व संघ परिवार की हिन्दुत्व की राजनीति को मात दी जा सकती है। इस प्रकार का तर्क देने वाले यह मानकर चलते हैं कि यह हिन्दुत्व की राजनीति के द्वारा निर्मित हिन्दू एकता को निश्चय ही तोड़ेगा। परन्तु ऐसे लोग यह नहीं समझ पाते कि अन्य फ़ासीवादी विचारधाराओं की ही तरह हिन्दुत्व की विचारधारा का भी सबसे महत्वपूर्ण अंग व्यवहारवाद है। हिन्दुत्व फ़ासीवादी जहाँ एक ओर मुस्लिमों को दुश्मन बताते हुए एक पूर्ण रूप से विचारधारात्मक हिन्दू पहचान का निर्माण करते हैं वहीं दूसरी तरफ़ उन्हें जाति-आधारित पहचान की राजनीति करने से भी कोई परहेज़ नहीं है। अलग-अलग मंचों पर अलग-अलग श्रोताओं के अनुसार वे अलग-अलग पहलुओं पर ज़ोर देते हैं। उच्च जातियों के बीच घोर ब्राह्मणवादी श्रेष्ठतावादी प्रचार करने के साथ ही साथ उन्होंने पिछड़ी व दलित जातियों के बीच जाति-आधारित पहचान की राजनीति करने में अन्य सभी बुर्जुआ पार्टियों को पीछे छोड़ दिया है और साथ ही वे सभी हिन्दुओं के बीच मुस्लिम-विरोधी राजनीति को ज़हर फैलाते रहते हैं। यह महज़ इत्तेफ़ाक नहीं है कि भाजपा का उभार मण्डल की राजनीति के साथ-साथ ही हुआ और आज भाजपा के समर्थन आधार का बहुलांश पिछड़ी जातियों, दलितों व आदिवासियों के बीच से आता है। इस प्रकार मण्डल 1.0 कभी भी भाजपा की हिन्दुत्व की राजनीति के लिए प्रभावी चुनौती नहीं रहा है और यह मानने की कोई वजह नहीं है कि मण्डल 2.0 ऐसा करने में सक्षम होगा। ऐसा तेलंगाना के ही उदाहरण से समझा जा सकता है जहाँ भाजपा जातिगत जनगणना का विरोध नहीं कर रही है, परन्तु मुस्लिमों में पिछड़ी जातियों को पिछड़ी जातियों की श्रेणी में शामिल करके उन्हें पिछड़ी जाति के आरक्षण का लाभ देने का खुलकर विरोध कर रही है ताकि पिछड़ी जाति के हिन्दुओं के बीच पिछड़ी जाति के मुस्लिमों को प्रतिद्वन्द्वी के रूप में पेश किया जा सके ना कि उच्च जाति के हिन्दुओं को। इस प्रकार वह जाति-आधारित पहचान की राजनीति व साम्प्रदायिक हिन्दुत्ववादी राजनीति दोनों एक-साथ कर रही है। ग़ौरतलब है कि तेलंगाना में हाल के वर्षों में भाजपा के वोट में इज़ाफ़े की मुख्य वजह पिछड़ी जातियों के बीच उसके समर्थन में बढ़ोत्तरी रही है। तेलंगाना में बंडी संजय कुमार और एटला राजेन्द्र जैसे भाजपा के प्रमुख नेता पिछड़ी जातियों से ही आते हैं।

अनुसूचित जाति के आरक्षण के मामले में भी भाजपा तेलंगाना में माला और मदीगा दलितों के बीच की खाई का इस्तेमाल मदीगा लोगों के बीच अपनी पैठ बनाने के लिए कर रही है। ग़ौरतलब है कि माला दलित जतियाँ मदीगा दलित जातियों की तुलना में बेहतर स्थिति में हैं। मदीगा जातियों के नेता अनुसूचित जाति के आरक्षण के भीतर मदीगा लोगों को आरक्षण देने के लिए मुहिम चला रहे हैं। कांग्रेस सरकार मदीगा लोगों को 9 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए तैयार है, परन्तु सबसे लोकप्रिय मदीगा नेता मन्द कृष्ण मदीगा 11 प्रतिशत आरक्षण की माँग कर रहे हैं। ग़ौरतलब है कि मन्द कृष्ण मदीगा फ़ासिस्ट भाजपा का ख़ुलकर समर्थन कर रहे हैं। तेलंगाना के पिछले विधानसभा चुनावों में उन्होंने चुनावी रैली में नरेन्द्र मोदी से मुतासिर होकर उनके पाँव तक छुए थे। भाजपा ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें पद्मश्री की उपाधि से नवाज़ने के साथ ही साथ अन्य भौतिक प्रोत्साहनों की बौछार भी की है। ऐसे में यह मानने का कोई आधार नहीं है कि भाजपा हिन्दुत्व पर अडिग रहते हुए भी जाति-आधारित पहचान की राजनीति नहीं कर सकती है।

अन्त में यह समझना ज़रूरी है कि **रेवन्त रेड्डी द्वारा जातिगत जनगणना पर इतना ज़ोर देने की वास्तविक वजह क्या है।** ज़ाहिर है कि रेवन्त रेड्डी और कांग्रेस पार्टी तेलंगाना के मेहनतकशों की विशाल आबादी का कल्याण करने को नहीं आतुर हैं। जातिगत जनगणना के पीछे की असली वजह जानने के लिए हमें दिसम्बर 2023 के तेलंगाना विधानसभा चुनाव के दौर में जाना होगा। उस चुनाव में सत्तारूढ़ केसीआर नीत बीआरएस पार्टी की तगड़ी हार की मुख्य वजह बेरोज़गारी के मसले पर उसका फिसड्डी प्रदर्शन था। ग़ौरतलब है कि तेलंगाना राज्य बनाने के लिए चले आन्दोलन के तीन प्रमुख मुद्दे नीलू (पानी), निधूलू (कोष) और नियमकालू (बेरोज़गारी) के थे। हैदराबाद में आईटी सेक्टर की चकाचौंध के पीछे अक्सर यह स्याह सच्चाई छिप-सी जाती है कि तेलंगाना में बेरोज़गारी की दर देश की बेरोज़गारी की औसत दर से कहीं ज़्यादा है। सरकार के अपने रिकॉर्ड के अनुसार तेलंगाना में युवा बेरोज़गारों की संख्या 37 लाख से ज़्यादा है। कहने की ज़रूरत नहीं कि वास्तविक बेरोज़गारों की संख्या इस सरकारी आँकड़े से कहीं ज़्यादा होगी।

कांग्रेस ने अपने कार्यकाल के पहले वर्ष में ही 2 लाख नौकरियाँ देने और 4000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता देने का वायदा किया था। कांग्रेस को सत्ता में आये एक साल से भी ज़्यादा का समय बीत चुका है, फिर भी वह अब तक महज़ कुछ हज़ार नौकरियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित कर सकी है। नयी सरकार द्वारा अपने वायदों से मुकरने की वजह से तेलंगाना के युवाओं में आक्रोश के पनपने की शुरुआत हो चुकी है जिसका एक मुज़ाहिरा पिछले साल अक्टूबर माह में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले हज़ारों छात्रों द्वारा हैदराबाद में भीषण विरोध-प्रदर्शन के दौरान देखने में आया था। युवाओं की अपेक्षाओं को पूरा कर पाने में विफल तेलंगाना के मुख्यमंत्री रेवन्त रेड्डी ने अब जातिगत जनगणना का नया शिगूफ़ा उछाला है ताकि रोज़गार के मोर्चे पर उनकी विफलता से लोगों को ध्यान भटकाया जा सके। मज़दूर वर्ग और छात्रों-युवाओं को इस राजनीति को समझना होगा और बुर्जुआ वर्ग की पार्टियों द्वारा बेरोज़गारी के मुद्दे को आरक्षण और उपवर्गीकरण तक सीमित कर देने के झाँसे में आकर झूठी उम्मीद पालने की बजाय रोज़गार की गारण्टी और बेरोज़गारी भत्ते जैसी माँगों के इर्द-गिर्द लामबन्द होना होगा।

मज़दूरों की चीख़ों और मौतों पर टिका पूँजीवाद का निर्माण उद्योग

(पेज 1 से आगे)

बाँध से सूखा प्रभावित नालगोण्डा और नागरकुलनूर जिलों में ले जाने के लिए बनाया जा रहा है। इसमें 44 किलोमीटर लम्बी सुरंग नहर बनायी जा रही है। यह अपने क़िस्म की दुनिया की सबसे बड़ी सिंचाई सुरंग है। इस सिंचाई सुरंग के रास्ते में कई पहाड़ियाँ, दरारयुक्त तथा फटी हुई चट्टानें तथा भू-जल के सोते मौजूद हैं जो भू-वैज्ञानिक रूप से इस तरह की परियोजना के लिए चुनौतीपूर्ण हैं। इस परियोजना के लिए टेण्डर पूर्व मुख्यमन्त्री वाई. एस. राजशेखर रेड्डी के कार्यकाल में सन् 2005 में निकला और निर्माण कार्य सन् 2007 से शुरू हुआ। यह काम पहले भी कई बाधाओं के साथ जारी रहा पर अब इसे सन् 2026 तक पूरा करने का अत्यधिक दबाव था। इस काम का ठेका जयप्रकाश एसोसिएट्स नामक कम्पनी को दिया गया था जो जेपी ग्रुप की कम्पनी है।

जेपी ग्रुप निर्माण तथा संरचना क्षेत्र में काम करने वाली कम्पनी है तथा पहले भी इसके द्वारा किये गये कामों में सुरक्षा मानकों की भारी अनदेखी की जाती रही है। यह कम्पनी पहले भी अपने मुनाफ़े की हवस में भू-वैज्ञानिक मानकों तथा विशेषज्ञों की रिपोर्टों को दरकिनार करते हुए मज़दूरों की ज़िन्दगी से खिलवाड़ करती रही है। इसी जेपी ग्रुप द्वारा उत्तराखण्ड में टिहरी बाँध परियोजना का निर्माण किया गया था जहाँ 2 अगस्त 2004 को हुए हादसे में सुरंग में फँसने से 29 मज़दूर मारे गये थे जिसमें से अधिकतर बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा और पंजाब के थे। उस समय भी कई मज़दूर बच निकलने में सफल हो गये थे अन्यथा यह हादसा और भी बड़ा हो सकता था। ध्यान रहे कि टिहरी बाँध परियोजना में भी तेलंगाना की एस.एल.बी.सी. परियोजना की तरह भू-वैज्ञानिक रिपोर्टों की अनदेखी की गयी थी तथा सुरक्षा और आपदा-प्रबन्धन की तैयारी के बिना ही मज़दूरों को काम पर भेजा गया था। सवाल यह उठता है कि ऐसी कम्पनियों को उनके आपराधिक रिकार्ड के बावजूद काम कैसे मिल जाता है? लगातार सुरक्षा मानकों की अनदेखी और मज़दूरों की मौतों के बावजूद राज्य की जाँच एजेंसियों और सरकारों को क्यों कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता ? साफ़ है, **पूँजीपतियों के मुनाफ़े के आगे मज़दूरों की जान की कोई क़ीमत नहीं है।**

'श्रीशैलम लेफ़्ट बैंक कैनाल' परियोजना का यह हादसा दिखाता है कि इसमें जिस तरह की लापरवाही बरती गयी वह आपराधिक है। इसी परियोजना पर 2020 के एक शोध पत्र में, जिसके सह-लेखक भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग के पूर्व महानिदेशक मण्डपल्ली राजू भी थे, में यह बताया गया था कि सुरंग निर्माण का कार्य अधोभूमि (सब-सॉइल) की विस्तृत जाँच-पड़ताल के बिना ही शुरू कर दिया गया। ज्ञात हो कि इस तरह की किसी भी परियोजना के शुरू करने से पहले व्यापक भू-वैज्ञानिक परीक्षण किये जाते हैं। ज़मीन के नीचे की मिट्टी की व्यापक रिपोर्ट तैयार की जाती है। ज़मीन में गड्ढे खोदे जाते हैं, ज़मीन के नीचे के स्तरों की प्रकृति व व्यवहार, भूमिजल सोतों एवं मृदाजल स्तर आदि की जाँच की जाती है। निर्माण के दौरान निकासी हेतु निकासी गड्ढे (एक्सकैवेशन पिट एण्ड ड्रिफ़्ट) की स्थिति को चिन्हित करते हुए इसकी पूर्व व्यवस्था की जाती है। लेकिन इस मामले में नहर मार्ग टाइगर रिज़र्व फ़ॉरेस्ट में पड़ने के कारण अनुमति नहीं मिलने से सुरंग का ज़्यादातर हिस्सा भौतिक रूप से परीक्षण की पहुँच से दूर ही रहा और बिना उचित परीक्षण के ज़मीन के व्यवहार को जाने बिना ही कार्य शुरू कर दिया गया। आख़िर अनुमति लेकर जाँच किये बिना काम क्यों शुरू किया गया? इसी परियोजना के लिए जनवरी 2020 में 'एमबर्ग टेक एजी' द्वारा एक अध्ययन रिपोर्ट 'दि टनेल सिज़्मिक रिपोर्ट–303 प्लस' सौंपी गयी थी। जिसमें गलती के सम्भावित क्षेत्र (फ़ॉल्ट ज़ोन), अत्यधिक पानी और सीपेज वाले क्षेत्र (वाटर बीयरिंग ज़ोन), कमज़ोर चट्टानों के स्थल, आदि को चिह्नित करते हुए इस सुरंग की संरचनात्मक अस्थिरता के बारे में चेतावनी दी गयी थी। दुर्घटना के बाद भी कई विशेषज्ञों द्वारा उचित सर्वेक्षण के अभाव, सुरक्षा मानकों की अनदेखी और आपदा की स्थिति से निपटने के लिए प्रबन्धन की अनदेखी जैसे बड़ी दिक़्क़तों को चिह्नित किया है। जब पहले से ही रिपोर्टें मौजूद थीं और उनमें इस तरह की चेतावनी दी गयी थी तो फिर आख़िर क्यों इनका अनुपालन नहीं किया गया? आख़िर तेलंगाना सरकार का सिंचाई विभाग जिसके अधीन यह काम चल रहा था, ठेकेदार जेपी एसोसिएट लिमिटेड या अन्य प्राधिकरणों ने इन सब रिपोर्टों के होने के बावजूद सुरक्षा मानकों और आपदा से निपटने की पूर्व व्यवस्था क्यों नहीं की? साफ है कि इन दुर्घटनाओं में मरने वाले मज़दूरों की ज़िन्दगी की क़ीमत ठेकेदारों और हुक्मरानों के लिए कुछ भी नहीं है। मुनाफ़ा बढ़ाने और मज़दूरों की सुरक्षा की अनदेखी का यह कोई पहला हादसा नहीं है। मज़दूरों के साथ होने वाले ऐसे क्रूर और आपराधिक हादसों (हत्याओं) की फ़ेहरिस्त बहुत लम्बी है।

निर्माण और संरचना उद्योग में भारत में इस तरह के हादसे आये दिन होते रहते हैं। आइए, एक नज़र पिछले कुछ वर्षों में निर्माण क्षेत्र में हुए कुछ हादसों पर डालते हैं। नवम्बर, 2023 में उत्तराखण्ड के सिलक्यार-बालकोट सुरंग की घटना सभी को याद होगी जिसमें 41 मज़दूर सुरंग में फँस गये थे और उन्हें 17 दिनों की मशक़्क़त के बाद बचाया जा सका था। इस घटना में भी भू-वैज्ञानिक रिपोर्टों की अनदेखी, संरचनात्मक कारण एवं सुरक्षा मानकों और आपदा-प्रबन्धन की कमी ही ज़िम्मेदार थी। इन मज़दूरों को बचाने में लगे रैट-होल माइनर मज़दूरों को पुरस्कृत करने की बजाय इनमें से कई के घरों को दिल्ली में सरकार ने बुलडोज़र से तोड़ दिया। नवयुग इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड जो इस घटना में मुख्य ठेका कम्पनी थी, उसको क्या सज़ा हुई? इस कम्पनी ने भाजपा को इलेक्टोरल बॉण्ड के ज़रिये 45 करोड़ रुपये का चुनावी चन्दा दिया था जो इसके और भाजपा के रिश्ते को दिखाता है।

सितम्बर, 2018 में कोलकाता के मेजरहट फ्लाईओवर के ढहने की घटना हो या बिहार में विगत वर्षों में कई पुलों के गिरने की घटनाएँ हों, जिसमें कई मज़दूर अपनी जान गँवा बैठे और घायल हो गये, मुनाफ़े की हवस और भ्रष्टाचार के कारण ऐसी जानलेवा घटनाएँ होना एक आम बात हो गयी है। एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार 1977 से 2017 तक भारत में 2130 पुलों के ढहने की घटनाएँ हो चुकी हैं। जनवरी, 2025 में कन्नौज (यूपी) में रेलवे स्टेशन के एक निर्माणाधीन भवन के ढहने से 24 मज़दूर घायल हो गये। दिसम्बर, 2024 में जयपुर-अजमेर सड़क निर्माण में कार्य अधूरा छोड़ने और तीखा मोड़ देने के कारण हुई रोड दुर्घटना में 14 लोग मारे गये। नवम्बर, 2024 में गुजरात में एक पुल ढहने से 3 लोगों की मौत हो गयी। गुजरात में ही अक्टूबर, 2024 में निर्माण स्थल की दीवार ढहने से 9 मज़दूर मारे गये। 16 फुट गहरा गड्ढा खोदने में सुरक्षा उपाय नहीं करने से मिट्टी मज़दूरों के ऊपर गिर गयी और वे दफ़्न हो गये। इस तरह की घटनाओं की संख्या बहुत अधिक है।

12 सितम्बर, 2023 की टाइम्स ऑफ़ इण्डिया की एक रिपोर्ट के अनुसार मुम्बई में विगत तीन वर्षों में निर्माण मज़दूरों की मौतों का आँकड़ा तीन गुना बढ़ गया है। इसी रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रतिदिन भारत में निर्माण स्थलों पर घातक दुर्घटनाओं की संख्या 38 है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) की रिपोर्ट के अनुसार निर्माण स्थलों पर होने वाली दुर्घटनाओं के मामले में भारत पूरी दुनिया में पहले स्थान पर है। भारत सरकार के योजना आयोग (अब नीति आयोग) के तहत स्थापित 'निर्माण उद्योग विकास परिषद' की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में निर्माण क्षेत्र का मज़दूर अत्यधिक अरक्षित और असुरक्षित है। इसमें अधिकतर काम करने वाले मज़दूर अनौपचारिक मज़दूर हैं। उत्पादन क्षेत्र की तुलना में निर्माण क्षेत्र में गम्भीर दुर्घटनाएँ चार से पाँच गुना अधिक हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार निर्माण मज़दूरों में प्रति 1000 मज़दूर 165 लोगों को चोटें आती हैं। कुल पेशागत दुर्घटनाओं में केवल निर्माण क्षेत्र में ही 24.20 प्रतिशत दुर्घटनाएँ होती हैं। 2 मार्च, 2024 की विभिन्न समाचारों के आधार पर बनायी एक रिपोर्ट के आधार पर बताया गया कि विगत एक सप्ताह में 22 मज़दूरों की मौत हुई। यह इस क्षेत्र में होने वाली मौतों की भयावहता की महज़ चन्द तस्वीरें हैं। कहने के लिए न्यूनतम मज़दूरी क़ानून, सुरक्षा नियमावली एवं क़ानून तथा कामगार मुआवज़ा क़ानून बने हुए हैं परन्तु वास्तविक धरातल पर ये कितना उतरते हैं हम सभी जानते हैं। निर्माण क्षेत्र में मज़दूरों की सुरक्षा और जीवन के बारे में राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार इस क़दर आपराधिक हद तक लापरवाह हैं कि किसी के पास निर्माण क्षेत्र में होने वाली दुर्घटनाओं का कोई ठोस आँकड़ा तक उपलब्ध नहीं है।

इस तरह की घटनाएँ आये दिन होने के बावजूद क्यों कोई संज्ञान नहीं लिया जाता है? नेता-मन्त्री इस तरह की घटनाएँ हो जाने पर जुबानी जमाख़र्च करते हुए बयान तो देते हैं लेकिन क्यों ढाँचागत ठोस क़दम नहीं उठाया जाता? नियामक प्राधिकरण जिनको सुरक्षा मानकों का पालन सुनिश्चित करवाना है क्यों ऐसा नहीं कर पाते हैं? ठेकेदार तथा निर्माण एजेंसियाँ क्यों मज़दूरों की जान से खेलती हैं और सुरक्षा मानकों पर कोई ध्यान नहीं देतीं? इन प्रश्नों के उत्तर नेताशाही, नौकरशाही और निर्माण एजेंसियों के उस गँठजोड़ में है जिसमें मज़दूरों की ज़िन्दगी की क़ीमत पर मुनाफ़े और मेहनत की लूट के माल का बँटवारा होता है। यह बात विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियों को निर्माण कम्पनियों द्वारा दिये गये चुनावी चन्दों पर एक नज़र डालने से साफ हो जाती है।

बहुचर्चित इलेक्टोरल बॉण्ड घोटाला एक ऐसा मामला था जो पूँजीपतियों और चुनावबाज़ पार्टियों के अवैध सम्बन्धों की पोल खोलकर रख देता है। इसमें विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियों को लेकिन मुख्य रूप से भाजपा को पूँजीपतियों ने बैंक से बॉण्ड ख़रीदकर चुनावी चन्दा दिया था। इसमें रियल स्टेट तथा निर्माण व संरचना उद्योग से जुड़ी कम्पनियों ने बढ़चढ़कर चन्दा दिया था। यूँ तो यह लिस्ट काफी लम्बी है परन्तु कुछ कम्पनियों द्वारा दिये गये चन्दे पर गौर कीजिये। 'फ्यूचर गेमिंग एण्ड होटल सर्विसेस प्रा. लिमिटेड' नामक कम्पनी, जो लॉटरी, रियल स्टेट तथा निर्माण का काम करती है, ने चुनावी चन्दे के रूप में 1365 करोड़ रुपये का चन्दा विभिन्न पार्टियों को दिया था। इसमें से भाजपा को 100 करोड़, कांग्रेस को 50 करोड़, तृणमूल कांग्रेस को 542 करोड़ तथा डीएमके को 502 करोड़ रुपये एवं शेष अन्य पार्टियों को दिया गया था। 'मेधा इंजीनियरिंग एण्ड इन्फ्रास्ट्रकचर लिमिटेड ने कुल 966 करोड़ रुपये का चन्दा दिया था, जिसमें से अकेले भाजपा को 584 करोड़, भारत राष्ट्र समिति को 195 करोड़, कांग्रेस को 18 करोड़, डीएमके को 85 करोड़ रुपये तथा शेष अन्य पार्टियों को दिया गया था। डीएलएफ़ कमर्शियल डेवेलपर्स ने कुल 130 करोड़ रुपये का चन्दा भाजपा को दिया था। बी. जी. शिकरे कॉन्सट्रक्शन कम्पनी टेक्नोलोजी प्रा. लिमिटेड ने 85 करोड़ रुपये शिवसेना तथा 30 करोड़ रुपये का चन्दा भाजपा को दिया था। चेन्नई ग्रीनवुड प्रा. लिमिटेड ने कुल 50 करोड़ भाजपा को तथा 40 करोड़ रुपये का चन्दा तृणमूल कांग्रेस को दिया था। एनसीसी लिमिटेड ने 60 करोड़ रुपये का चन्दा भाजपा को दिया था। नवयुग इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड, जो सिलक्यार-बालकोट सुरंग की घटना में मुख्य ठेका कम्पनी थी, ने भाजपा को इलेक्टोरल बॉण्ड के रूप में 45 करोड़ रुपये का चुनावी चन्दा दिया था। यह लिस्ट काफ़ी लम्बी है। आख़िर ये निर्माण कम्पनियाँ विभिन्न पार्टियों को मज़दूरों की लूट से अर्जित मुनाफ़े का एक हिस्सा चन्दे के रूप में क्यों दे रहीं हैं? मामला साफ़ है : सारी चुनावबाज़ पार्टियाँ इन्हीं पूँजीपतियों के सामूहिक हितों को सुनिश्चित करने के लिए ही तो नीतियाँ बनाती हैं और बदले में मुनाफ़े में अपना हिस्सा लेती हैं।

भारत में निर्माण क्षेत्र में कृषि क्षेत्र के बाद सर्वाधिक मज़दूर काम करते हैं। निर्माण क्षेत्र से देश की जीडीपी का लगभग 9 प्रतिशत से अधिक हिस्सा आता है। यूँ तो हर क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का बर्बर शोषण होता है परन्तु निर्माण क्षेत्र के मज़दूर अत्यधिक अरक्षित हैं। इस क्षेत्र में काम करने वाले अधिकतर मज़दूर प्रवासी होते हैं तथा अनौपचारिक क्षेत्र में आते हैं। संगठित न होने के कारण ये अपनी माँगों को नहीं उठा पाते। बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी एवं सामाजिक सुरक्षा के अभाव में ये अत्यन्त कम मज़दूरी पर बेहद ख़राब परिस्थितियों में जान जोखिम में डालकर काम करने को मजबूर होते हैं। कार्य की असुरक्षा और इनकी मजबूरी का फ़ायदा सभी निर्माण कम्पनियाँ उठाती हैं। ये तमाम निर्माण कम्पनियाँ जहाँ एक ओर निर्माण स्थलों पर पर्यावरणीय एवं भू-वैज्ञानिक मानकों का उल्लंघन कर प्रकृति का दोहन करती हैं और जानलेवा प्रदूषण जैसी स्थितियों का एक कारण बनती हैं और पारिस्थितिकी तन्त्र को तबाह करती हैं, वहीं दूसरी ओर काम की जगहों पर सुरक्षा इन्तज़ामों की अनदेखी करती हैं। वे ऐसा इसलिए करती हैं ताकि इन पर होने वाले व्यय को कम करके अपने

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूरों की चीख़ों और मौतों पर टिका पूँजीवाद का निर्माण उद्योग

(पेज 9 से आगे)

मुनाफ़े को बढ़ा सकें। ऊपर हमने देखा कि किस तरह तमाम घटनाओं में सुरक्षा मानकों की अनदेखी और आपदा प्रबन्धन की धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं और मज़दूरों की जान को जोखिम में डाला जाता है। इन मुनाफ़ाख़ोरों के लिए मज़दूरों की जान की कोई क़ीमत नहीं है।

वैसे तो पूँजीवादी निर्माण उद्योग सदा से ही मज़दूरों-मेहनतकशों के पसीने और खून से ही फलता-फूलता रहा है और निर्माण कम्पनियों की तिजोरियाँ भरता रहा है। परन्तु आज जब पूरी अर्थव्यवस्था एक ढाँचागत मन्द मन्दी का लगातार शिकार है तो निर्माण उद्योग में मज़दूरों की ज़िन्दगी की क़ीमत पर पूँजीपति अन्धाधुन्ध मुनाफ़ा कूटना चाहते हैं। रियल स्टेट में जितनी परिसम्पत्तियाँ बाज़ार में बिकने के लिए प्रति वर्ष उपलब्ध होती हैं वे बिक नहीं पातीं। अपने मुनाफ़े की दर को गिरने से बचाने या और अधिक बढ़ाने के लिए पूँजीपति अपने व्यय को लगातार कम करना चाहते हैं। ऐसे में पर्यावरण को बचाते हुए काम करना, पारिस्थितिकी तन्त्र को बनाये रखने की चिन्ता और उस पर व्यय तथा मज़दूरों की सुरक्षा पर व्यय उन्हें बेमतलब का ख़र्च लगता है। मेहनत और कुदरत की लूट पहले से कहीं अधिक क्रूर रूप में वे करना चाहते हैं। ऐसे में पूँजीपतियों के लिए फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा किसी भी क़ीमत पर उनको मुनाफ़ा कमाने की गारण्टी तो है ही। मोदी सरकार के लेबर कोड का भी असल मक़सद यही है कि मेहनत और कुदरत की लूट में आने वाली सभी बाधाओं को ख़त्म कर धनपिपासु पूँजीपतियों को मज़दूरों की हड्डियों का चूरा बना डालने और उनके ख़ून को सिक्कों में ढालने की पूरी आज़ादी मुहैया करा दी जाये। समूचा पूँजीपति वर्ग मोदी और भाजपा को लाखों करोड़ रुपये का चन्दा यूँही थोड़ी न देता है! सुरक्षा उपायों जैसे कि जूतों, दस्तानों, मास्क, एप्रेन, सेफ़्टी बेल्ट, औद्योगिक चश्मे, हेल्मेट, मज़दूरों के रहने के लिए मानक रिहायशों का निर्माण, स्वच्छ शौचालय व पीने के पानी की व्यवस्था तथा आपदा प्रबन्धन आदि पर ख़र्च इन निर्माण कम्पनियों को बेमतलब लगता है। मज़दूरों की सुरक्षा पर किये जाने वाला एक रुपये का ख़र्च भी इन्हें बेकार लगता है।

पिछले 10 वर्षों में फ़ासीवादी मोदी सरकार के कार्यकाल में निर्माण उद्योगों में सुरक्षा उपायों को और अधिक ताक पर रखकर तेज़ी से इसको बढ़ाया गया है। रहे-सहे श्रम क़ानूनों को लेबर कोड के माध्यम से ख़त्म कर दिया गया है। आज पहले से कहीं अधिक क्रूर और नंगे रूप में निर्माण एजेंसियाँ व पूँजीपति वर्ग, नेता-मन्त्री तथा सरकारी एजेंसियाँ मज़दूरों के श्रम की लूट का हिस्सा आपस में बाँट रही हैं। मुनाफ़े का एक हिस्सा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से नेताओं व नियन्त्रणकारी एजेंसियों की जेब में जाता है। नेताओं के एक बड़े हिस्से का पैसा भी इन निर्माण एजेंसियों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लगा रहता है। निर्माण क्षेत्र काले धन के इस्तेमाल का भी एक बड़ा सेक्टर है। साथ ही यह काले धन का स्रोत भी है। आज न केवल बड़ी निर्माण एजेंसियों की राष्ट्रीय व राज्य स्तर के नेताओं से साठगाँठ है बल्कि ज़िले और ब्लॉक स्तर पर भी ठेकेदारों, रियल एस्टेट एजेंसियों, भूमाफ़ियाओं और प्लॉटिंग एजेंसियों का एमएलए व ब्लॉक प्रमुख जैसे छुटभैया नेताओं से खूब गलबँहियाँ रहती हैं। आज तमाम निर्माण नियामक एजेंसियों व सरकारी संस्थानों के उच्च अधिकारी न केवल अपने सेवा काल में इन निर्माण उद्योग कम्पनियों से मिलीभगत रखते हैं बल्कि सेवानिवृत्ति के बाद इन्हीं कम्पनियों में उच्च पदों पर विराजमान हो जाते हैं और सीधे-सीधे उनके लिए काम करने लगते हैं। अन्य क्षेत्रों की क्या कहा जाये, आज न्यायपालिका के जज तक अपनी सेवानिवृत्ति के बाद विभिन्न पार्टियों और कम्पनियों के लिए काम करना शुरू कर देते हैं। आज यह प्रवृत्ति और अधिक बढ़ती जा रही है। पूँजीपतियों तथा सत्ता की यह पूरी जमात पुलिस थानों से लेकर न्यायपालिका तक, लेबर ऑफ़िसों से लेकर नियामक प्राधिकरणों तक में सक्रिय हैं। इसीलिए दुर्घटनाओं और मौतों के बावजूद इससे कोई सबक लेने और दूर करने की बजाय कुछ लीपा-पोती करने के बाद लूट के इसी पहिये को आगे बढ़ाने में सभी एकजुट हो जाते हैं। आज पूँजीवादी लूट और सत्ता का गँठजोड़ अभूतपूर्व है।

श्रीशैलम लेफ़्ट बैंक कैनाल का यह हादसा निर्माण क्षेत्र में मज़दूरों की लाशों पर खड़े निर्माण उद्योग से मुनाफ़ा कमाने की पूँजीवादी हवस की एक प्रातिनिधिक घटना है। तभी तो ठेका कम्पनी जेपी ग्रुप का प्रमुख जयप्रकाश गौड़ तेलंगाना के सड़क भवन मन्त्री के वी रेड्डी से मीटिंग के बाद मीडिया रिपोर्टरों से बात करते हुए बेख़ौफ़ होकर कहता है कि "मेरे जीवन में इस तरह की छह-सात घटनाएँ हुई होंगी... आपको इन घटनाओं का सामना करना ही होगा।" अर्थात अगर पूँजीपतियों के मुनाफ़े के आधार पर निर्माण कार्य करना है तो मज़दूरों की बलि तो देनी ही होगी!

मज़दूर वर्ग के लिए इस तरह की घटनाओं के क्या मायने हैं? उससे उसे क्या सबक़ लेना है और आगे उसे क्या करना होगा? इस व्यवस्था में मज़दूर जानवरों की तरह खटने और मरने के लिए अभिशप्त है। हम अपने भाइयों-बहनों को इस तरह दफ़्न होते नहीं देख सकते। आज यह चुप्पी बहुत अधिक घातक होगी। अपने ऊपर थोपी गयी इन दमघोंटू स्थितियों को बदलने और मौत के जुवे को उतार फेंकने के लिए मज़दूर आबादी को एकजुट होना ही होगा। अनौपचारिक क्षेत्र के इस बड़े क्षेत्र में अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे। आज इस फ़ासीवादी निज़ाम और समूचे पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ अपनी एकता से ही हम अपने को बचा पायेंगे। साथ ही हमें इस व्यवस्था की चौहद्दियों में अपनी सुरक्षा तथा वेतन आदि की लड़ाइयों को लड़ते हुए इसके आगे भी सोचना होगा। एक मुनाफ़ा-केन्द्रित मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था के बरक्स मानव केन्द्रित समतामूलक व्यवस्था के लिए भी संघर्ष करना ही होगा, जहाँ उत्पादन करने वाले वर्गों के हाथ में सत्ता की बागडोर हो और फैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में हो।

स्त्री मज़दूर दिवस (8 मार्च) पर मनरेगा स्त्री मज़दूरों का नारा :

पूरे साल काम दो! काम के पूरे दाम दो!! काम नहीं तो बेरोज़गारी भत्ता दो!

बीडीपीओ कार्यालय पर क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन का प्रदर्शन

4 मार्च। कलायत, बीडीपीओ कार्यालय पर क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के बैनर तले स्त्री दिवस (8 मार्च) के अवसर पर स्त्री हक-अधिकारों के लिए रैली व प्रदर्शन का आयोजन किया गया। मनरेगा यूनियन ने बीडीपीओ को अपनी माँगों का ज्ञापन सौंपा।

यूनियन के प्रभारी अजय ने बताया कि गाँव सिमला, चौशाला, रामगढ़ व आसपास के गाँवों में मनरेगा मज़दूर विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हैं। यूनियन द्वारा पहले भी मनरेगा मज़दूरों के माँगपत्रक बीडीपीओ कार्यालय में दिये गए हैं लेकिन लम्बा समय बीतने के बाद भी विभाग द्वारा इस समस्या का हल नहीं किया गया है।

इसलिए इस स्त्री दिवस पर मनरेगा में कार्यरत स्त्री मज़दूर अपने जायज़ हक़-अधिकारों की लड़ाई के लिए सड़कों पर उतरी हैं। चौशाला गाँव की मेट मीना ने बताया कि हर गाँव में मनरेगा के सौ मज़दूरों में 90 स्त्री मज़दूर हैं। इसलिए भी इस स्त्री मज़दूर दिवस के अवसर पर हमें अपनी एकजुटता और संघर्ष की विरासत को कायम रखना चाहिए। हमें मनरेगा मज़दूर के तौर पर पूरे साल काम और काम के पूरे दाम की लड़ाई सड़कों पर लानी चाहिए। आप जानते हैं कि

कलायत तहसील में किसी भी मनरेगा मज़दूर परिवार को पूरे 100 दिन रोज़गार नहीं मिलता है। असल में मनरेगा क़ानून के तहत 1 वर्ष में एक मज़दूर परिवार को 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी मिलनी चाहिए। साथ ही क़ानूनन रोज़गार के आवदेन के 15 दिन के भीतर काम देने या काम ना देने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ता देने की बात कही गयी है। लेकिन कलायत ब्लॉक या पूरे देश में मज़दूरों को औसतन 30-35 दिन ही काम मिलता है।

सिमला गाँव के अनिल ने बताया कि दूसरी तरफ़ मोदी सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों के कारण मनरेगा के बजट में लगातार कटौती की जा रही है। बजट कटौती का सीधा मतलब श्रम दिवस के कम होने और रोज़गार के अवसरों में भी कमी है। कैथल में मनरेगा भ्रष्टाचार से भी जाहिर है कि बजट का एक बड़ा हिस्सा भी भ्रष्ट अफ़सरशाही की जेब में चला जाता है। यूनियन से अजय ने बताया कि ज़ाहिर है कि मनरेगा की योजना को भ्रष्टाचार-मुक्त बनाकर लागू करने से ही गाँव के ग़रीबों की सारी समस्याएँ हल नहीं हो जायेंगी और मनरेगा की पूरी योजना ही गाँव के ग़रीबों को बस भुखमरी रेखा पर बनाये रखने का काम ही कर सकती है। ज़रूरत इस बात की है कि सच्चे मायने में रोज़गार गारण्टी, पर्याप्त न्यूनतम मज़दूरी, सभी श्रम अधिकारों समेत गाँव के ग़रीबों को प्राथमिक से उच्च स्तर तक समान व निशुल्क शिक्षा, समान, स्तरीय व निशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएँ, आवास की सरकार सुविधा, और सामाजिक सुरक्षा मुहैया करायी जाय। यह काम मौजूद पूँजीवादी व्यवस्था में कोई सरकार नहीं करती क्योंकि पूँजीपतियों की सेवा करने से उन्हें फ़ुरसत ही कहाँ होती है! ग़रीबों की सुध लेने का काम मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था नहीं करने वाली। लेकिन तात्कालिक माँग के तौर पर मनरेगा में भ्रष्टाचार को समाप्त करने की लड़ाई मज़दूरों के एक रोज़मर्रा के हक़ की लड़ाई है, जिसे आगे बढ़ाने का काम यूनियन कर रही है।

चौशाला गाँव से अजय भाल ने बताया कि 115 साल पहले दुनिया के कई देशों की मेहनतकश स्त्रियों की नेताओं ने एक सम्मेलन में फ़ैसला किया था कि हर साल 8 मार्च को 'अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस' मनाया जायेगा। यह दिन हर साल हमें हक़, इन्साफ़ और बराबरी की लड़ाई में फ़ौलादी इरादे के साथ शामिल होने की याद दिलाने आता है। पिछली सदी में दुनिया की मेहनतकश औरतों ने संगठित होकर कई अहम हक़ हासिल किये थे। मज़दूरों की हर लड़ाई में औरतें भी कन्धे से कन्धा मिलाकर शामिल हुईं। मनरेगा मज़दूरों को अपनी गौरवशाली विरासत से प्रेरणा लेते हुए अपने हक-अधिकारों के संघर्ष को तेज करना होगा।

– बिगुल संवाददाता

शहीदे-आज़म भगतसिंह आज देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों और मेहनतकशों को क्या सन्देश दे रहे हैं?

(पेज 1 से आगे)

की सरकार हो, सभी भगतसिंह और उनके क्रान्तिकारी समाजवादी संगठन हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन (एच.एस.आर.ए.) की समूची क्रान्तिकारी धारा के विचारों को आज भी सक्रिय रूप से दबाने, भुला-बिसरा देने और उस पर राख की परतें चढ़ा देने का काम बड़ी सावधानी से और सोचे-समझे तरीक़े से करते हैं।

क्यों? ऐसा क्यों है? हम मज़दूरों को एक बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए : *हमारे देश का शासक वर्ग, यानी, कारख़ानों, कम्पनियों, उद्यमों व खानों-खदानों के मालिकों, धनी व्यापारियों, धनी किसानों, दलालों, बिचौलियों, पूँजी के अहलकारों यानी नौकरशाहों-नेताओं, सेना-पुलिस के उच्च अधिकारियों का समूचा सामाजिक संस्तर, जिन विचारों को दबाना चाहता है और हमसे छिपाना चाहता है, वे विचार आम तौर पर हमारे हित में होते हैं। अगर इस देश के हुक्मरान भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को पिछले आठ दशकों से दबाते, छिपाते और विकृत करते आये हैं, तो हमें समझ लेना चाहिए कि इन विचारों में हम मेहनतकशों-मज़दूरों के हित की बात है।*

इस बार हम इसी विषय में बात करेंगे कि भगतसिंह और उनके साथियों के वे विचार क्या हैं, जिनसे देश के हुक्मरान आज भी घबराते हैं और उन्हें हमसे छिपाने और दूर करने की नयी-नयी तरक़ीबें निकालते हैं। एक सम्पादकीय अग्रलेख में शहीदे-आज़म भगतसिंह के विचारों की सम्पूर्ण चर्चा सम्भव नहीं है। उसके लिए हम मज़दूरों को स्वयं भगतसिंह के लेख, निबन्ध आदि पढ़ने होंगे। इसलिए यहाँ हम बस नुक़्तेवार कुछ मोटी-मोटी बातों को समझेंगे और उसके ज़रिये यह जानने की कोशिश करेंगे कि भगतसिंह और उनके साथियों के विचार व उनकी स्मृति आज हमें इतिहास के गलियारों से क्या सन्देश दे रही है।

सबसे पहली बात तो यह है कि भगतसिंह महज़ एक बहादुर मुक्तियोद्धा नहीं थे, बल्कि एक महान चिन्तक थे। सच है कि महज़ 23 साल की उम्र में वह शहीद हो गये थे। लेकिन इस छोटी-सी उम्र में ही उन्होंने दुनियाभर के क्रान्तिकारी साहित्य, अलग-अलग मुल्कों में आज़ादी की लड़ाइयों, मार्क्सवाद और समाजवाद के विचारों, रूसी क्रान्ति के इतिहास के बारे में गहरा अध्ययन किया था। इस अध्ययन का बड़ा हिस्सा उन्होंने जेल में रहते हुए किया था। लेकिन अगर इस दौर के उनके लेखन पर कोई संक्षिप्त निगाह डालें तो स्पष्ट होता है कि अपने क्रान्तिकारी जीवन के शुरुआती दौर में अपनाये गये दुस्साहसवादी तौर-तरीक़ों से भगतसिंह का चिन्तन बेहद आगे जा चुका था। इस बात को वह स्पष्ट तौर पर समझ चुके थे कि बम और पिस्तौल अपने आप में आज़ादी या इंक़लाब नहीं ला सकते हैं। यह देश की बहुसंख्यक मेहनतकश जनता, यानी मज़दूर और ग़रीब मेहनतकश किसान हैं, जो समाज का क्रान्तिकारी रूपान्तरण कर डालने का काम करते हैं। *जनता इतिहास बनाती है।*

दूसरी बात यह है कि भगतसिंह और उनके साथियों ने बार-बार स्पष्ट किया था कि उनकी लड़ाई सिर्फ़ अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ नहीं है। उनकी लड़ाई लूट पर टिकी समूची व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। उनकी लड़ाई का मक़सद एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण है जिसमें इन्सान के हाथों इन्सान का शोषण असम्भव हो जाये। एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारियों ने अपने लेखन में बार-बार साफ़ किया था कि अंग्रेज़ों से आज़ादी भारत की मेहनतकश जनता की मुक्ति का महज़ पहला क़दम है। लेकिन अगर आज़ादी देश के पूँजीपति वर्ग की पार्टी कांग्रेस या किसी भी अन्य पूँजीवादी दल के नेतृत्व में आयेगी, तो वह गोरे हुक्मरानों से भूरे हुक्मरानों के बीच एक समझौते के रूप में ख़त्म होगी। वजह यह कि ये सभी पूँजीवादी दल देश के पूँजीपतियों, धनी दुकानदारों व भूस्वामियों की नुमाइन्दगी करते हैं। ऐसे में, आज़ादी के बाद यदि ये ही लुटेरे व शोषक वर्ग सत्ता में पहुँचेंगे, तो देश की जनता को औपनिवेशिक ग़ुलामी से आज़ादी ज़रूर मिलेगी। लेकिन उन्हें अपने ही देश के पूँजीपतियों और भूस्वामियों द्वारा होने वाले शोषण, उत्पीड़न और दमन से आज़ादी नहीं मिलेगी। यह आज़ादी देश की आम जनता को एक ऐसी व्यवस्था में ही मिल सकती है, जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के समूचे ढाँचे पर उन वर्गों का नियन्त्रण हो, जो स्वयं सुई से लेकर जहाज़ तक सबकुछ बनाते हैं, यानी मज़दूरों-मेहनतकशों के राज में; दूसरे शब्दों में, समाजवादी व्यवस्था में। भगतसिंह और उनके साथियों की दूरगामी लड़ाई एक समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने की थी। भगतसिंह ने अपने प्रसिद्ध लेख **'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा'** में लिखा था:

> "मेरी राय में इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताक़तें मैदान में नहीं हैं। यह संघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूँजीपतियों के बलबूते किया जा रहा है। ये दोनों वर्ग, विशेषतः पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कियत ख़तरे में डालने की जुर्रत नहीं कर सकते। वास्तविक क्रान्तिकारी सेनाएँ तो गाँवों और कारख़ानों में हैं – किसान और मज़दूर... भारत सरकार का प्रमुख लार्ड रीडिंग की जगह यदि सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास हो तो उन्हें (जनता को) इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? एक किसान को इससे क्या फ़र्क़ पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन की जगह सर तेज बहादुर सप्रू आ जायें? राष्ट्रीय भावनाओं की अपील बिल्कुल बेकार है।... क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शब्दावली में इसका सिर्फ एक ही अर्थ हो सकता है – जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाक़ी सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ाँध को ही आगे बढ़ाते हैं।...भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते...हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते।.... क़ौम कांग्रेस के लाउडस्पीकर नहीं हैं, वरन् वे मज़दूर-किसान हैं जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है।"

तीसरी बात, भगतसिंह उस समय ही इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता जनता के सबसे ख़तरनाक दुश्मनों में से एक है। अपने समय में उन्होंने हिन्दू महासभा, आर.एस.एस., इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठनों, आदि जैसे साम्प्रदायिक संगठनों की तीखी आलोचना की थी और बताया था कि ऐसे संगठन अंग्रेज़ों के हाथों में खेलते हैं और जनता की एकता को तोड़ने का काम करते हैं। *आज के समय में भगतसिंह के ये विचार विशेष तौर पर प्रासंगिक हैं।* देश में इस समय धर्म के नाम पर की जा रही फ़ासीवादी साम्प्रदायिक राजनीति ने जनता की कमर तोड़कर रख दी है। एक ऐसे समय में जब बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी, भूख, कुपोषण और बीमारी ने देश के 80 फ़ीसदी लोगों का जीना मुहाल कर रखा है, जब शिक्षा और चिकित्सा आम मेहनतकश जनता की पहुँच से बाहर जा चुकी है, निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों का देश की आम जनता लगातार ख़ामियाज़ा भुगत रही है, तो मोदी सरकार और संघ परिवार की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी नीतियों ने देश की जनता को धर्म के नाम पर बाँटने का काम लगातार जारी रखा है। इसका मक़सद यह है कि एक ओर देश की जनता की बदहाली के लिए ज़िम्मेदार असली ताक़त यानी समूची पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग कठघरे से बाहर हो जाता है, और देश के बहुसंख्यक समुदाय की आम जनता के समक्ष एक नक़ली दुश्मन के तौर पर मुसलमानों को पेश कर दिया जाता है। गोदी मीडिया से लेकर समूचे फ़िल्म उद्योग तक को इस समय दंगाई की भूमिका में लाकर खड़ा कर दिया गया है। समाचार चैनलों पर लगातार साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और अन्धविश्वास का ज़हर उगला जा रहा है। 'छावा' जैसी फ़िल्मों के ज़रिये झूठा इतिहास पेश कर जनता के बीच साम्प्रदायिक आधार पर वैमनस्य पैदा किया जा रहा है और इतिहास के कल्पित "अन्याय" का बदला लेने के लिए कुण्ठित और हीनता-ग्रन्थि के शिकार टुटपुँजिया हिन्दू जनमानस को ललकारा जा रहा है। इसका नतीजा नागपुर में हुई साम्प्रदायिक हिंसा में सामने भी आने लगा है। नागपुर तो केवल एक प्रातिनिधिक उदाहरण है। पूरे देश के ही जनमानस में एक ऐसा विष घोला जा रहा है जिसका नतीजा आने वाले समय में धनी वर्गों, अमीरज़ादों और सेठों को नहीं बल्कि देश की आम मेहनतकश जनता को ही चुकाना पड़ेगा। ऐसे समय में, देश के आम मेहनतकश लोगों के लिए भगतसिंह का **'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज'** नामक लेख में दिया गया सन्देश और भी ज़्यादा प्रासंगिक हो गया है।

भगतसिंह ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि मेहनतकश लोगों और ग़रीब जनता को धर्म को पूर्णत: एक व्यक्तिगत मसला मानना चाहिए। कौन-सा व्यक्ति कौन-सा धर्म मानता है या कोई भी धर्म नहीं मानता, यह उसका निजी मामला है और इसका राजनीति और सामाजिक जीवन से कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए। भगतसिंह ने देश की जनता से पूछा कि हम धर्म के मसले पर अलग-अलग होकर भी राजनीति यानी अपने वर्ग हितों के लिए किये जाने वाले संघर्ष में एक क्यों नहीं हो सकते? अपने उक्त लेख में भगतसिंह लिखते हैं :

> "जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अख़बारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा उठाया था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज-स्वराज' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता में बह चले हैं।"

आज अख़बारों की जगह आप समूचा गोदी मीडिया पढ़ें जिसमें अख़बार समेत सभी समाचार चैनल, यूट्यूब पर चलने वाले साम्प्रदायिक चैनल, व्हाट्सऐप पर चलने वाले साम्प्रदायिक ग्रुप आदि सभी शामिल हैं। इसी लेख में आगे वह लिखते हैं:

> "लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए **वर्ग चेतना** की जरूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि **तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं,** इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

भगतसिंह के ये शब्द आज उनके समय से भी ज़्यादा प्रासंगिक हैं और इस बात को आप और हम अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि ऐसा क्यों है।

चौथी बात, साम्प्रदायिकता के ही समान जाति प्रश्न और अस्पृश्यता की समस्या पर भी भगतसिंह के विचार आज ख़ास तौर पर मौजूँ हो गये हैं, हालाँकि वे हमेशा ही प्रासंगिक थे। *भगतसिंह ने स्पष्ट किया था कि दलित आबादी की मुक्ति का रास्ता सुधारों, पैबन्दसाज़ी, पहचान की राजनीति, सरकारों की बाट जोहने, अर्ज़ियाँ और आवेदन देते रहने के व्यवहारवाद और सुधारवाद से होकर नहीं जाता है। केवल और केवल एक आमूलगामी श्रमिक क्रान्ति ही जाति के अन्त और दलितों की मुक्ति का रास्ता खोल सकती है।* आज जिस प्रकार अम्बेडकरवादी व्यवहारवाद, सुधारवाद, संविधानवाद की राजनीति और पहचान की राजनीति ने दलित मुक्ति की समूची परियोजना को अर्ज़ीबाज़ी के गोल चक्कर और प्रतीकवाद की अन्धी गली में भटका और घुमा दिया है, वह सबके सामने है। भगतसिंह ने **'अछूत समस्या'** नामक लेख में जो विचार पेश किये हैं, वे इस समूचे वातावरण में आश्चर्यजनक रूप से प्रासंगिक हैं। भगतसिंह अपने इस लेख में लिखते हैं:

> "लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी ग़ुलामी और ग़रीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सबकुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो... संगठनबद्ध

(पेज 12 पर जारी)

शहीदे-आज़म भगतसिंह आज देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों और मेहनतकशों को क्या सन्देश दे रहे हैं?

(पेज 11 से आगे)

हो जाओ। तुम्हारी कुछ हानि न होगी। बस ग़ुलामी की ज़ंजीरें कट जायेंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बग़ावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा।"

इसी लेख में भगतसिंह यह भी बताते हैं कि स्वयं मज़दूरों व मेहनतकशों की आबादी में जिस प्रकार जातिगत पूर्वाग्रह और ऊँच-नीच की सोच व्याप्त है, उसे दूर करने का रास्ता वर्गीय एकजुटता है, न कि पहचान की राजनीति के ज़रिये जनता के ही अलग-अलग हिस्सों को जाति के आधार पर आपस में लड़ा देना। जनता के बीच के अन्तरविरोधों और जनता और दुश्मन वर्गों के बीच के अन्तरविरोधों के बीच जो फ़र्क़ नहीं करता, वह मेहनतकश आबादी की मुक्ति की लड़ाई को एक क़दम भी आगे नहीं ले जा सकता है। उक्त लेख में ही भगतसिंह लिखते हैं:

"अलग-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव मिटाना ज़रूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा। जब तक हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तब तक हममें वास्तविक एकता नहीं हो सकती।"

भगतसिंह के इन विचारों को आज समझने और लागू करने की ज़रूरत पहले हमेशा से ज़्यादा है। जब साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मोदी सरकार सत्ता में है, जब देश भर में संघ परिवार साम्प्रदायिक विषवमन कर जनता की एकजुटता पर हमला कर रहा है, जब जाति की पहचानवादी राजनीति को कभी जाति जनगणना के नाम पर तो कभी नयी-नयी श्रेणियाँ बनाकर आरक्षण की राजनीति के ज़रिये हावी बनाया जा रहा है, जब जनता के जनवादी हक़ों पर लगातार फ़ासीवादी हमले किये जा रहे हैं, तो भगतसिंह के विचार हमारी पीढ़ी के मज़दूरों, मेहनतकशों, ग़रीब किसानों और छात्रों-युवाओं के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ का काम कर रहे हैं। देश में आज जो माहौल है, उसके बारे में भगतसिंह के निम्न शब्द हमारे ज़ेहन में बार-बार गूँजते हैं :

"जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की ज़रूरत है, अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जनता को ग़लत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इन्सान की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह ज़रूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की जाये, ताकि इन्सानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"

पाँचवीं बात, शहीदे-आज़म भगतसिंह ने स्पष्ट बताया था कि किसी देश में मज़दूरों-मेहनतकशों के इंक़लाब के लिए दो बुनियादी चीज़ों की ज़रूरत होती है : **सर्वहारा वर्ग की वैज्ञानिक विचारधारा और दूसरा एक जुझारू व अनुशासित क्रान्तिकारी संगठन।** बिना विचारधारा के संगठन अन्धी गली में भटकता रहेगा और बिना संगठन के विचारधारा कभी मूर्त रूप नहीं ले पायेगी बल्कि एक हवा-हवाई चीज़ बनकर रह जायेगी। और बिना संगठन और विचारधारा के जनता के आन्दोलन स्वत:स्फूर्तता की सीमा से आगे नहीं जा सकेंगे। इनके अभाव में जनता विद्रोहों को तो ज़रूर जन्म दे सकती है और शक्तिशाली विद्रोहों की सूरत में शासन-परिवर्तन भी कर सकती है, लेकिन वह व्यवस्था-परिवर्तन नहीं कर सकती। व्यवस्था-परिवर्तन के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था का ख़ाका होना ज़रूरी है और ऐसा ख़ाका एक सही विचारधारात्मक लाइन, राजनीतिक लाइन और कार्यक्रम के ज़रिये ही पेश किया जा सकता है, जिसे क्रान्ति के विज्ञान के अध्ययन और क्रान्तिकारी व्यवहार के ज़रिये सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी संगठन, यानी क्रान्तिकारी पार्टी ही सूत्रबद्ध कर सकती है।

'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' नामक अपने प्रसिद्ध लेख में, जिसे हम ऊपर भी उद्धृत कर चुके हैं, भगतसिंह स्पष्ट शब्दों में एक क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत पर बल देते हैं। जब आप उनके विचारों को पढ़ते हैं तो आप पाते हैं कि वे लेनिन द्वारा बताये गये बोल्शेविक संगठन जैसे संगठन की ही बात कर रहे हैं, जो लौह-अनुशासन के आधार पर काम करते हैं, अपने समूचे ढाँचे को पूँजीवादी राज्यसत्ता के रहमोकरम पर नहीं रखते और जिनकी रीढ़ की हड्डी ऐसे पेशेवर क्रान्तिकारियों से तैयार होती है, जो पूर्ण रूप से क्रान्ति और क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरतों के अनुसार पूरावक़्ती कार्यकर्ता के तौर पर काम करते हैं। ऐसे पेशेवर क्रान्तिकारी किसी भी वर्ग से आ सकते हैं, बशर्ते कि वे राजनीतिक तौर पर सर्वहारा वर्ग का पक्ष चुनें। लेकिन निश्चित तौर पर यह बेहद ज़रूरी है कि उन्नत व वर्ग-चेतना से लैस मज़दूर ऐसी पार्टी की ज़रूरत को समझें, पेशेवर क्रान्तिकारी बनने के रास्ते को अपनायें और एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी को देशव्यापी पैमाने पर खड़ा करने के लिए जी-जान से जुट जायें।

केवल ऐसी पार्टी ही पूँजीवादी व्यवस्था और शासक पूँजीपति वर्ग को निर्णायक तौर पर चुनौती दे सकती है; केवल ऐसी पार्टी ही मज़दूरों, ग़रीब किसानों व आम मेहनतकश आबादी को एक साझा कार्यक्रम पर गोलबन्द और संगठित कर सकती है और केवल ऐसी पार्टी ही समूची मेहनतकश जनता का क्रान्तिकारी कोर बन एक मज़दूर इंक़लाब की अगुवाई कर सकती है जो मज़दूर सत्ता के मातहत समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करे; एक ऐसी व्यवस्था जिसमें सभी कल-कारख़ानों व खानों-खदानों व बड़े उद्यमों का राष्ट्रीकरण कर उसे राज्य के मातहत कर दिया जायेगा, सभी बड़े कुलकों व फ़ार्मरों के फ़ार्मों को ज़ब्त कर उस पर सामूहिक व राजकीय सरकारी फ़ार्मों की स्थापना कर दी जायेगी, समूचे उत्पादन और वितरण को सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर नियोजित और संगठित किया जायेगा और राज-काज और समाज के समूचे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ होगा व फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में होगी। केवल एक ऐसी व्यवस्था में ही हमारे समाज को बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, जात-पात, शोषण व दमन से मुक्ति मिल सकती है और मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो सकता है।

शहीदे-आज़म भगतसिंह ने एक ऐसे समाज का ही सपना देखा था और यह कोई शेखचिल्ली का सपना नहीं था। यह एक वैज्ञानिक सोच पर और व्यावहारिक कार्यक्रम पर आधारित उद्देश्य है। आज भगतसिंह की स्मृति, उनकी विरासत और उनके विचार इतिहास के नेपथ्य से हमें यह आवाज़ दे रहे हैं :

भारत के मज़दूरो, ग़रीब किसानो, आम मेहनतकशो और आम छात्रो व युवाओ! तुम चाहे किसी भी धर्म, जाति, नस्ल, क्षेत्र या भाषा से रिश्ता रखते हो, तुम्हारे राजनीतिक व आर्थिक हित समान हैं, तुम्हारी एक जमात है! तुम्हें लूटने वाली इस देश की परजीवी पूँजीवादी जमात है जिसमें कारख़ाना मालिक, खानों-खदानों के मालिक, ठेकेदार, धनी व्यापारी, धनी किसान व ज़मीन्दार, दलाल और बिचौलिये शामिल हैं! ये जोंक के समान इस देश की मेहनतकश अवाम के शरीर पर चिपके हुए हैं! ये ही इस देश की मेहनत और कुदरत की लूट के बूते अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं! इनके जुवे को अपने कन्धों से उतार फेंको! इसके लिए संगठित हो, अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करो! केवल यही शहीदे-आज़म भगतसिंह की स्मृतियों को इस देश के मेहनती हाथों का सच्चा क्रान्तिकारी सलाम होगा, उनको सच्ची आदरांजलि होगी : एक ऐसे समाज का निर्माण करके जिसमें सुई से लेकर जहाज़ बनाने वाले मेहनतकश वर्ग उत्पादन, समाज और राज-काज पर अपना नियन्त्रण स्थापित करेंगे, परजीवी लुटेरी जमातों के हाथों से राजनीतिक और आर्थिक सत्ता छीन ली जायेगी, जो मेहनत नहीं करेगा उसे रोटी खाने का भी अधिकार नहीं होगा, दूसरे की मेहनत की लूट का हक़ किसी को नहीं होगा, जिसमें, भगतसिंह के ही शब्दों में, मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।

भगतसिंह ने कहा

"समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनियाभर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकनेभर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन.लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

"यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

"सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्त्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे

साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

"यह है हमारा आदर्श। और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरज़ोर चेतावनी दी है। लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन. व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

(सेशन कोर्ट में बयान)

स्त्री मुक्ति आन्दोलन को सुधारवाद, संशोधनवाद, नारीवाद और एनजीओपन्थ की राजनीति से बाहर लाना होगा

● अंजलि

अँधेरे कमरों और
बन्द दरवाज़ों से
बाहर सड़क पर
जुलूस में और
युद्ध में तुम्हारे होने के
दिन आ गए हैं।

– गोरख पाण्डेय

8 मार्च यानी अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस पूरी दुनिया की आधी आबादी के संघर्षों को याद करने का दिन है और साथ ही आज के संघर्षों को नये सिरे से संगठित करने के संकल्प का दिन है। यह वह ऐतिहासिक दिन है जो स्त्रियों के शोषण, अत्याचार, पुरुष वर्चस्ववाद के तमाम रूपों से मुक्ति और जीवन के हर पहलू में पूर्ण समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष का प्रतीक है। आज बाज़ार की शक्तियों, पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों और पूँजीवादी व्यवस्था के 'सेफ़्टी वॉल्व' संशोधनवादी नक़ली वामपन्थी पार्टियों, अस्मितावादियों, नारीवादी संगठनों और तमाम एनजीओपन्थियों द्वारा इसकी क्रान्तिकारी विरासत पर धूल और राख़ डालने की कुत्सित कोशिश की जा रही है। इनके द्वारा 8 मार्च के क्रान्तिकारी चरित्र को बदलकर इसे सरकारी आयोजनों, रस्मी अनुष्ठानों और एनजीओपन्थी सुधारवाद और नारीवाद की अन्धी गली में कैद करने की कोशिश की जा रही है।

आज हम अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस एक ऐसे दौर में मना रहे हैं जब देश में फ़ासीवादी शक्तियों द्वारा स्त्रियों के लम्बे संघर्षों के बाद हासिल अधिकारों को छीन लेने की कोशिशें की जा रही हैं और स्त्रियों की स्वतन्त्रता, सम्मान और सुरक्षा पर चौतरफा हमले और भी तेज़ हो गये हैं। ऐसे दौर में ज़रूरी है कि न केवल अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु पर हो रहे तमाम हमलों का वैचारिक-सांस्कृतिक जवाब दिया जाय बल्कि आज हमारे सामने यह जलता हुआ सवाल भी है कि 8 मार्च की क्रान्तिकारी विरासत की रोशनी में आज की समस्याओं का मूल्यांकन किया जाये और प्रतिरोध के कारगर औज़ार भी गढ़े जायें।

कई बार हम मज़दूरों-मेहनतकशों में भी 8 मार्च को लेकर एक उपेक्षा का नज़रिया इस रूप में होता है कि यह केवल स्त्रियों के संघर्ष को याद करने का दिन है। ज़ाहिरा तौर पर ऐसी सोच हमारे भीतर मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था और मीडिया के ज़रिये पैदा की जाती है ताकि हम हर प्रकार के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ होने वाले संघर्ष से अपने को जोड़कर देखने की क्षमता खो दें और व्यापक मेहनतकश जनता की एकता स्थापित ही ना हो सके। लेकिन एक बात हमें स्पष्ट तौर पर समझ लेनी चाहिए कि दुनिया में जहाँ कहीं भी अन्याय, उत्पीड़न और दमन के ख़िलाफ़ संघर्ष चल रहा है या चला है हर उस जगह लड़ने वाले लोग हमारे अपने हैं चाहे उनका रंग, धर्म, देश या जेण्डर कोई भी हो और ठीक इसीलिए इन सभी संघर्षों की क्रान्तिकारी विरासत भी हमारी अपनी विरासत है। अपनी क्रान्तिकारी विरासत के प्रति उपेक्षा का रवैया चाहे-अनचाहे हमें पूँजीपति वर्ग या उत्पीड़न करने वाले लोगों के पाले में खड़ा कर देता है। इस प्रकार हमारी क्रान्तिकारी एकता कमज़ोर होती है और हम भी उत्पीड़न का शिकार होने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

बहुत बार हम मेहनतकश वर्ग के लोग और मज़दूर स्त्रियाँ भी अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को जानने से वंचित रह जाती हैं। बाज़ार की शक्तियाँ हम तक इसकी क्रान्तिकारी विरासत को पहुँचने ही नहीं देती। हमें इस विरासत को जानकर अपने मज़दूर भाइयों-बहनों को बताना होगा और संघर्ष के नये रास्तों का अनुसन्धान करना होगा। इसके लिए ज़रूरी है कि सबसे पहले हम इसके इतिहास को समझें।

अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस का इतिहास

आज के फ़ासीवादी दौर में सत्ताधारियों द्वारा जनता के जुझारू इतिहास के विकृतिकरण और फ़ासीवादीकरण की मुहिम चलाकर मेहनतकश जनता के सामूहिक स्मृतिलोप की कोशिश की जा रही है। मज़दूरों-मेहनतकशों का एक बड़ा हिस्सा इसके प्रभाव में आकर अपने शानदार संघर्षशील इतिहास की तरफ पीठ करके जाने-अनजाने पूँजीवादी पितृसत्तात्मक मूल्यों का शिकार हो जाता है। कज़्ज़ाक लेखक रसूल हमज़ातोव ने अबू तालिब के हवाले से लिखा है कि "यदि तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसायेगा।" इस बात की सच्चाई को आज हम अपने रोज़-ब-रोज़ के संघर्षों में देख सकते हैं। ऐसे में ज़रूरी है कि हम अपने संघर्षों के इतिहास की गहराई से पड़ताल करें और फ़ासिस्ट विकृतिकरण से इतिहास पर जमी काई को साफ़ करें।

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री कामगार दिवस का इतिहास स्त्री कामगारों के पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से जुड़ा हुआ है। यूरोप, अमेरिका व दुनिया के अलग अलग हिस्सों में स्त्री कामगारों ने अपने हक़-अधिकारों की लड़ाई का आग़ाज़ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही कर दिया था। 1857 में लूट और मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था के बर्बर शोषण और उत्पीड़न से परेशान कपड़ा मिल के स्त्री मज़दूरों ने अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में मज़दूरी में वृद्धि और बेहतर कार्य स्थितियों व काम के घण्टे 16 की जगह 10 करने के लिए विशाल धरना प्रदर्शन किया। स्त्री मज़दूरों की एकता और जुझारू संघर्ष से बौखलाये अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के इशारों पर "लोकतन्त्र की जननी" अमेरिका की पूँजीवादी सरकार द्वारा इस आन्दोलन का बुरी तरह दमन किया गया। इस भयानक दमन के बाद भी स्त्री मज़दूर योद्धाओं का हौसला नहीं डिगा। पूँजीपतियों की चाहत के विपरीत इससे सबक सीखते हुए दो वर्ष बाद इन स्त्रियों ने अपनी पहली यूनियन का गठन किया। 1908 में न्यूयॉर्क में क़रीब 20,000 स्त्री श्रमिकों ने बेहतर कार्य-स्थितियों, वोट देने के अधिकार और बेहतर मज़दूरी के लिए प्रदर्शन किया। इस आन्दोलन ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी तरफ खींचा।

1910 में डेनमार्क के कोपेनहेगेन में दुनिया भर की मज़दूर पार्टियों के अन्तरराष्ट्रीय मंच ने अन्तरराष्ट्रीय स्त्री सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें दुनिया के 17 देशों की 100 से ज़्यादा स्त्री राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इसी सम्मेलन में जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट नेता क्लारा जेटकिन ने यह प्रस्ताव रखा कि स्त्रियों के संघर्ष के दिन को अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में पूरी दुनिया में मनाया जाये। इस प्रस्ताव पर सदन में आम सहमति बनी। इसके बाद पहली बार अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस 19 मार्च, 1911 को ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड में मनाया गया। इसके बाद 1921 तक हर साल फ़रवरी माह के आख़िरी रविवार को अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में मनाया जाता रहा।

रूस में 1917 की फ़रवरी क्रान्ति के दौरान युद्ध रोकने, भोजन, आवास और बेहतर जीवन स्थितयों की माँग को लेकर बड़ी संख्या में स्त्रियों ने प्रदर्शन किया। स्त्रियों के इस आन्दोलन से पैदा हुआ ज्वार ज़ारशाही के खात्मे तक पहुँचा और फिर केरेंस्की की आरज़ी सरकार के खात्मे तथा मज़दूर वर्ग के महान नेता लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक क्रान्ति के रूप में मुकाम पर पहुँचा। रूस की समाजवादी सत्ता ने पहली बार स्त्रियों को चूल्हे-चौखट से आज़ाद कराया और स्त्रियों को मताधिकार मिला। चूँकि स्त्रियों का यह महान प्रदर्शन भी 8 मार्च को शुरू हुआ था, इसलिए इस तारीख़ को अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस के रूप में चुना गया।

इस संघर्ष की गर्मी कुछ देशों तक सीमित नहीं रही बल्कि इसकी आँच दुनिया भर में औपनिवेशिक दमन झेल रहे देशों तक भी पहुँची। अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी विरासत से प्रेरणा लेते हुए औपनिवेशिक देशों की स्त्रियों ने भी दमन और उत्पीड़न के जुए से आज़ादी के लिए बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में न केवल भागीदारी की बल्कि कई जगहों पर आन्दोलनों का नेतृत्व भी किया। इन दशाब्दियों में दुनियाभर की स्त्रियों ने पूँजी और पितृसत्ता के ख़िलाफ़ अपने अधिकार के लिए कई संगठित लड़ाइयाँ लड़ीं और कई अधिकार हासिल भी किये। भारत जैसे देश में राष्ट्रीय आन्दोलन से लेकर तमाम मज़दूरों-मेहनतकशों के आन्दोलन में औरतों ने बढ़-चढ़कर भागीदारी की।

लेकिन आज इस विरासत को छिपाकर इसे एक बाज़ारू त्यौहार में तब्दील करने की कोशिश न केवल सत्ताधारियों द्वारा की जा रही है बल्कि एनजीओछाप राजनीति, अस्मितावादी राजनीति और संशोधनवादी पार्टियों द्वारा भी की जा रही है जो स्त्री मुक्ति के सवाल को पूँजीवादी गलियारों में कैद करने की घटिया राजनीति करती हैं। इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। दुनिया का इतिहास रहा है कि संशोधनवादी राजनीति अपने उग्रपरिवर्तनवादी नारों और छद्म रैडिकल भाषणों के ज़रिये जनता की विरासत को धूमिल कर अन्ततः पूँजीवाद की आख़िरी सुरक्षापंक्ति बन जाती है। इन्हीं के पापों की वजह से मज़दूर वर्ग अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति को बनाये रखने में असमर्थ होता है और फ़ासीवाद जैसी प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ राजनीति को भी फलने-फूलने की उर्वर ज़मीन मिलती है। आज आन्दोलन के मद्धिम पड़ने की वजह से स्त्रियों को मिले अधिकार एक ओर छीने जा रहे हैं, दूसरी ओर पूँजीवादी पितृसत्ता का हमला भी दिन-ब-दिन तेज़ होता जा रहा है।

समाज में स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति : पूँजीवाद और पितृसत्ता के नापाक गठजोड़ का नतीजा

चीन में समाजवाद के टूटने के साथ ही सर्वहारा क्रान्तियों का एक चक्र पूरा हुआ है और फिलहाल श्रम की ताक़तों पर पूँजी की ताक़तें अभूतपूर्व रूप में हावी हैं। इक्कीसवीं सदी की शुरुआत तक पतनशील शासक पूँजीपति वर्ग के भाड़े के बुद्धिजीवियों द्वारा 'इतिहास का अन्त', 'विचारधारा का अन्त' जैसे उत्तरआधुनिक शोर और पूँजीवाद के अमरत्व जैसी तमाम अन्तहीन बकवास करते हुए मेहनतकश जनता के हक़-अधिकार पर हमला बोल रहे थे। यह शोर पूँजीवादी संकट के गहराने के पिछले दो दशकों में मरघटी सन्नाटे में तब्दील हो चुका है। लेकिन निश्चित ही आज भी मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी शक्तियाँ बिखरी हुई हैं और राजनीतिक तौर पर वह पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के समक्ष कोई चुनौती पेश करने की स्थिति में नहीं है। पूँजीपति वर्ग अपनी मन्दी का बोझ मज़दूरों के कन्धों पर डाल रहा है और उनकी औसत मज़दूरी को घटा रहा है, उनके काम के घण्टे बढ़ा रहा है, उनके तमाम श्रम अधिकारों को छीन रहा है, जो कि पहले ही काफ़ी हद तक कागज़ी बन चुके थे। स्त्री मज़दूरों की स्थिति और भी ज़्यादा भयंकर है।

स्त्रियाँ आज पूँजीवाद और पूँजीवादी पितृसत्ता की दोहरी गुलामी झेल रही हैं। एक तरफ पूँजीवादी

(पेज 14 पर जारी)

स्त्री मुक्ति आन्दोलन को सुधारवाद, संशोधनवाद, नारीवाद और एनजीओपन्थ की राजनीति से बाहर लाना होगा

(पेज 13 से आगे)

व्यवस्था सस्ती स्त्री-श्रमशक्ति के दोहन के ज़रिये अपना मुनाफ़ा बढ़ा रही है वहीं दूसरी तरफ पूँजीवादी पितृसत्तात्मक मानसिकता ने स्त्रियों को भी एक बिकाऊ माल बनाकर बाज़ार में खड़ा कर दिया है। आज स्त्री सम्मान, बराबरी, न्याय, नारीशक्ति, नारी सशक्तीकरण के कानफोड़ू शोर के पीछे जो असली सवाल छिपा दिया जा रहा है वह यह है कि आज भी समान काम के लिए स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में 67 फ़ीसदी मेहनताना ही मिलता है। पीस रेट पर होने वाले काम में अधिकांशतः स्त्रियाँ काम करती हैं, जहाँ बेहद कम मेहनताने पर 12 से 14 घण्टे काम कराया जाता हैं। इन्हें कार्यस्थल पर सुरक्षा, बीमा, मेडिकल जैसी कोई सुविधा हासिल नहीं होती है। पूँजीवादी व्यवस्था में स्त्री कार्यबल एक प्रकार की औद्योगिक रिज़र्व सेना का निर्माण करती है। समृद्धि के दौर में, स्त्रियों को बड़े पैमाने पर उद्योगों में काम पर रखा जाता है जैसा कि 70 के दशक तक इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योगों में तेज़ी के दौर में देखा गया। पूँजीपति स्त्रियों के सस्ते श्रम के बूते पुरुष मज़दूरों के वेतन को भी अधिकतम सम्भव स्तर तक कम करने का प्रयत्न करता है। वहीं मन्दी के दौर में छँटनी की पहली शिकार स्त्रियाँ होती हैं जैसा कि पिछले 30 वर्षों में और विशेष रूप से 2008 से देखा जा सकता है। मन्दी के दौरों में पूँजीपति वर्ग और साथ ही राज्य, लगातार श्रम बाज़ार से स्त्रियों को आंशिक वापसी के लिए प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार स्त्री मज़दूरों को घर की चौहद्दी में क़ैद कर और घरेलू कामों में लगाकर पूँजीपति वर्ग मज़दूरी की औसत दर में कमी लाने का प्रयास करता है क्योंकि इसके ज़रिये वह श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन की लागत को घटाने का काम करता है और पुरुष मज़दूरों के शोषण की दर को बढ़ाता है। यही काम आँगनवाड़ी, आशाकर्मियों जैसे स्कीम वर्कर्स के ज़रिये भी पूँजीपति वर्ग कर रहा है। स्त्रियों पर लक्षित विज्ञापनों की भरमार ने पूँजीवाद के दोहरे मंसूबे को दर्शाया, जिससे खपत में वृद्धि हुई और एक आदर्श गृहिणी और माँ की छवि को बढ़ावा मिला जिसे खाना बनाना, झाड़ू लगाना और हमेशा सुन्दर दिखना पसन्द है। मतलब साफ़ है कि पितृसत्ता को अपने हितों के मातहत बदलकर और पितृसत्तात्मक मानदण्डों के प्रयोग से पूँजीपति वर्ग को अपने माल की खपत के लिए बाज़ार मिलता है। एक तरफ पूँजीवादी पितृसत्ता पूँजीपति वर्ग द्वारा श्रमशक्ति की निर्मम लूट के लिए रास्ता प्रशस्त करती है वहीं दूसरी ओर स्त्री-विरोधी मानसिकता को भी बढ़ावा देती है।

भारत जैसे देश में जहाँ पूँजीवाद पुनर्जागरण-प्रबोधन-जनवादी क्रान्ति के ज़रिये स्थापित होने के बजाय ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा आरोपित आर्थिक-सामाजिक संरचना के गर्भ से पैदा हुआ, वहाँ अपने जन्म से ही कुपोषित-बीमार-विकलांग भारतीय पूँजीपति वर्ग ना तो जातिवाद, पितृसत्ता जैसे मूल्यों के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी बुर्जुआ जनवादी मूल्यों की स्थापना के लिए लड़ सकता था और ना ही इसे लड़ने की आवश्यकता थी। बल्कि भारतीय पूँजीपति वर्ग ने अपने हितों के मातहत इन मूल्य-मान्यताओं में आवश्यक बदलाव के साथ इन्हें अपने ढाँचे में शामिल कर लिया जिसकी वजह से भारतीय समाज में पुराने मूल्य-मान्यताओं की जकड़बन्दी नये रूपों में आज भी बनी हुई है। इस वजह से पेशा-पोशाक-जीवनसाथी जैसे निहायत वैयक्तिक मामलों में भी भारतीय समाज स्वतन्त्र नहीं है। इसी पृष्ठभूमि पर तमाम धार्मिक कट्टरपन्थी, तमाम रूढ़िवादी ताक़तें प्रश्रय पाती हैं। स्त्रियों की स्वतन्त्र सामाजिक-राजनीतिक भागीदारी, अपने जीवन के मामले में खुद फैसला लेने की कोशिशें रूढ़िवादी-कट्टरपन्थी ताक़तों को बर्दाश्त नहीं होती। उदाहरण के लिए देवरिया में एक लड़की के जीन्स पहनने की वजह से उसके चाचा द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। इसी तरह हैदराबाद में एक पिता द्वारा 18 महीने की अपनी बेटी की काले रंग के चलते ज़हर खिला कर हत्या कर दी गई। पूँजीवादी न्याय व्यवस्था में स्त्री विरोधी व रूढ़िवादी सोच किस क़दर हावी है इस बात से ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि अभी हाल ही में छत्तीसगढ़ हाईकोर्ट ने यह बयान दिया था कि पति द्वारा पत्नी का वैवाहिक बलात्कार ग़लत नहीं है। इसी तरह उत्तराखण्ड सरकार द्वारा यूसीसी बिल लागू कर लिव इन रिलेशनशिप यानी स्वेच्छा से बिना विवाह के साथ रहने के अधिकार को तमाम क़ानूनी सीमाओं में बाँध दिया गया है। यह एक नागरिक के स्वतन्त्र व्यतित्व विकसित करने व निर्णय लेने की स्वतन्त्रता पर हमला है।

ये बयान और इस तरह के क़ानून दिखाते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था स्त्रियों को उसी हद तक आज़ादी देता है जहाँ तक उसके मुनाफ़े में कोई बाधा न पैदा हो। माल उत्पादन पर टिकी यह व्यवस्था स्त्रियों को भी एक बिकाऊ माल या आइटम में तब्दील कर देती है। राह चलते इसकी घिनौनी अभिव्यक्तियाँ साफ सुनाई देती हैं। टीवी और सिनेमा में स्त्री शरीर का गरिमाहीन व अश्लील प्रदर्शन, आइटम साँग, स्त्रियों के बारे में फूहड़ चुटकुले आदि आम बात है। किशोरों और युवाओं की एक बड़ी आबादी हिंसक क़िस्म के अश्लील गानों को सुन-सुनकर बड़ी हो रही है। 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' का नारा उछालने वाली सरकार के समय में स्त्री-विरोधी अपराध और बर्बरता के मामले रिकार्ड तोड़ स्तर पर बढ़ गये हैं। वैसे सभी चुनावी पार्टियों में स्त्री उत्पीड़न के अपराधी भरे पड़े हैं लेकिन भाजपा इन सब में चार क़दम आगे है। एडीआर की रिपोर्ट के अनुसार संसद के 43% सांसदों पर हत्या, अपराध, बलात्कार के मुक़दमे दर्ज हैं। आज घर, ऑफिस, सड़क, कारख़ाना, कॉलेज हर जगह पर स्त्रियों को दमन-उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। वैसे तो बुर्जुआ व्यवस्था अपनी स्वाभाविक आन्तरिक गति से प्रति पल स्त्री विरोधी मानसिकता को उत्पादित और पुर्नुत्पादित करता रहता है। आर्थिक संकट के दौरों में फ़ासीवाद जैसी आपवादिक बुर्जुआ सत्ताओं के अस्तित्व में आने पर समाज में बर्बर अमानवीय और पाशविक तत्वों को और भी ज़्यादा बढ़ावा मिलता है। पिछले 11 सालों से हमारा देश इसका साक्षी बन रहा है।

जब ज़ुल्म बढ़ जाता है तो लोग उसे अपनी नियति मान बैठते हैं और सहन करना एक आदत बन जाती है! आज ठीक ऐसा ही हो रहा है। भयंकर क़िस्म के स्त्री-विरोधी अपराधों को अंजाम दे दिया जाता है और लोग अन्धे-बहरे-गूँगे बने देखते रहते हैं जैसे कि कुछ हुआ ही न हो! छोटी बच्चियों से लेकर बुज़ुर्ग स्त्रियाँ तक देश में सुरक्षित नहीं है। एनसीआरबी के आँकड़ों के मुताबिक़ साल 2022 में 4,45,256 स्त्री-विरोधी आपराधिक मामले दर्ज़ हुए। 2016 में ऐसे मामलों की संख्या 3,38,954 थी जबकि 2012 में इनकी संख्या 2,44,270 थी। स्त्री-विरोधी अपराध समाज पर बारिश की तरह बरस रहे हैं। इसके बावजूद समाज से इनके प्रतिरोध का स्वर बहुत विरल, क्षीण और गायब-सा है।

बढ़ते स्त्री विरोधी अपराधों के मूल और स्त्रियों के दोयम दर्ज़े के नागरिक होने की जड़, इस पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीवादी पितृसत्ता पर मरणान्तक चोट करने के लिए लोगों को जागरूक-गोलबन्द करने की ज़रूरत है। यह काम विश्व-पूँजीवाद और साम्राज्यवादी लुटेरों की कठपुतलियों और संशोधनवादी-सुधारवादी राजनीति के भरोसे नहीं किया जा सकता क्योंकि इनकी राजनीति भी अपने आख़िरी विश्लेषण में पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करती है।

8 मार्च की विरासत : सुधारवाद, संशोधनवाद, नारीवाद और एनजीओपन्थ से नाता तोड़ो, व्यापक मेहनतकश जनता के मुक्ति संघर्ष से नाता जोड़ो!

जो दिन हमारी मेहनतकश बहनों के संघर्ष का प्रतीक है आज उस दिन को माल बेचने के लिए महज एक त्यौहार बना दिया गया है। तमाम कम्पनियाँ इस दिन को मध्यवर्गीय स्त्रियों को लुभाने के लिए कॉस्मेटिक से लेकर कपड़ों-गहनों पर भारी छूट पर सीमित कर देती हैं और विज्ञापनों के जरिये स्त्रियों के संघर्ष के दिन को भी अपने मुनाफ़े को बढ़ाने में इस्तेमाल करती हैं। एनजीओपन्थी सुधारवाद व नारीवादी भी स्त्री संघर्षों के इस दिन को महज एक रस्मी कवायद करके काम ख़त्म कर लेती हैं और यह रस्मी कवायद भी केवल मध्यवर्गीय स्त्रियों तक ही सीमित होता है। नारी सशक्तीकरण के नाम पर की जाने वाली तमाम कवायदों के बहाने स्त्री मुक्ति के स्वप्न को व्यवस्था के दायरे के भीतर नौकरी, चुनावी राजनीति (संसद-विधानसभा आदि) में भागीदारी जैसे सुधारवादी भ्रमजालों में कैद कर दिया जाता है। नारी सशक्तिकरण के इस नारे की गूँज उन करोड़ों मेहनतकश औरतों तक कभी नहीं पहुँचती जो पूँजीवाद और पितृसत्ता दोनों के जुए तले पिस रही हैं। शासन-प्रशासन, मीडिया-फ़िल्म, रील-जगत आदि क्षेत्रों में शामिल शासक वर्ग व उच्च मध्यवर्ग की गिनी चुनी लड़कियों के उदाहरण देकर शासक वर्ग स्त्रिओं के सशक्तिकरण का दम भरता है। शासक वर्ग द्वारा इस दिन की पूरी क्रान्तिकारी विरासत पूरे स्त्री समुदाय से काट कर केवल एक दिन के लिए बसों में मुफ्त यात्रा, सामानों पर विशेष छूट व तमाम सेवाओं में छूट और एकाध स्त्रियों को अतिरिक्त सम्मान देने जैसे नाटकों तक सीमित कर दिया जाता है। आज इस नारी सशक्तीकरण और इस अनुष्ठान से अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस को मुक्त करना ज़रूरी है साथ ही इसे मध्यमवर्गीय दायरे से निकाल कर मेहनतकश जनता तक ले जाना एक जरूरी कार्यभार है।

स्त्री मुक्ति का रास्ता क्या होगा? सबसे पहले तो हमें यह समझना होगा कि स्त्री मुक्ति के संघर्ष को शहरी-शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय कुलीनतावादी दायरे के पार ले जाना होगा। इसे एनजीओपन्थी सुधारवादी संगठनों की पहचान की राजनीति से मुक्त करना होगा जो स्त्री-मुक्ति के नाम पर स्त्री-मुक्ति के आन्दोलन को महज स्त्री की पहचान की लड़ाई तक सीमित कर देते हैं। दूसरी बात कि उन नारीवादियों की राजनीति को भी समझना होगा जो स्त्री मुक्ति की लड़ाई को स्त्री बनाम पुरुष बनाकर स्त्री मुक्ति के आन्दोलन को पूरे जनसमूह से कटकर व्यक्तिगत विद्रोह तक समेट देती हैं। तीसरी बात संसदीय वामपन्थी पार्टियों से जुड़े स्त्री संगठनों की राजनीति का भी पर्दाफाश करना होगा जो स्त्री-मुक्ति आन्दोलन को भी संसदीय राजनीति और प्रतिनिधित्व के संकीर्ण दायरे में समेट देते हैं। इसकी सच्चाई दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि ऐसे किसी भी चनाजोरगरम नुस्ख़े से मेहनतकश स्त्रियों के जीवन पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला है। संसदीय व्यवस्था के भीतर स्त्री आरक्षण की माँग जनता को इसी पूँजीवादी दायरे के भीतर ही समाधान का धोखा देने जैसा है। संसद-विधानसभा लुटेरे अपराधियों का गढ़ बन चुका है। अगर इसमें कुछ स्त्रियों का प्रतिनिधित्व बढ़ा दिया जाए तब भी आम मेहनतकशों का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकेगा। स्त्री होना ही किसी को अपने आपमें जनपक्षधर, प्रगतिशील और क्रान्तिकारी नहीं बना देता है। अभी भी जो स्त्रियाँ इस दहलीज को पार कर सकी हैं उनका मेहनतकशों के जीवन से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है और जनता के ख़िलाफ़ शासक वर्गों की तमाम कार्रवाइयों को अंजाम देने में कई बार ये पूँजीपति वर्ग की राजनीतिक नुमाइन्दगी करने वाली औरतें पूँजीवादी पुरुष राजनीतिज्ञों को भी मात दे देती हैं। यह माँग ही गैर-सर्वहारा वर्ग-सहयोगवादी माँग है। यह माँग इसी पूँजीवादी संसदीय जनतन्त्र में मुक्ति का भ्रम और स्त्री मुक्ति के रास्ते में रोड़ा पैदा करेगा। अगर पूँजीवादी सत्ता अपने से यह क़ानून लागू करे तो हम उसका विरोध नहीं करेंगे लेकिन हमें इस भ्रम के ख़िलाफ़ भी लगातार संघर्ष करना होगा कि कुछ स्त्रियों को संसद-विधानसभाओं में आरक्षण दे देने से स्त्री मुक्ति के आन्दोलन को कोई लाभ पहुँचेगा। स्त्री पहचान ही अपने आपमें किसी को क्रान्तिकारी व प्रगतिशील नहीं बना देती। सवाल यह होता है कि उसकी राजनीति किस वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करती है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

वास्तव में निजी संपत्ति के पैदा होने के साथ ही स्त्रियों की गुलामी की शुरुआत होती है। पूँजीवाद निजी सम्पति की सबसे उन्नततम व्यवस्था है। इसका खात्मा ही स्त्री-मुक्ति का रास्ता हो सकता है। पूँजीवाद और पितृसत्ता नाभिनालबद्ध है। भारत जैसे देश में प्रशियाई रास्ते से बेहद मन्थर और कष्टदायी प्रक्रिया हुए पूँजीवादी विकास की वजह से ऐतिहासिक तौर पर तर्क, विज्ञान और जनवाद की जमीन यहाँ बेहद कमज़ोर रही है। आज स्त्री मुक्ति आन्दोलन और क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन के ऊपर यह ज़िम्मेदारी है कि इतिहास के इस छूटे हुए कार्यभार को नये सिरे से रेखांकित करे और नये सर्वहारा पुनर्जागरण-प्रबोधन के वैचारिक कार्यभार को पूरा करे और साथ ही स्त्री-मुक्ति आन्दोलन को मेहनतकशों के मुक्ति आन्दोलन से जोड़कर इस असमानता-लूट और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था को नष्ट कर एक समतामूलक, मानव केन्द्रित समाज व्यवस्था का निर्माण किया जाये।

केरल में ग़द्दार वामपन्थ के कारनामे – ‘धन्धा करने की आसानी’ को बढ़ावा, आशा कार्यकर्ताओं का दमन, अवसरवादियों का स्वागत

● बिपिन बालाराम

पिछले कुछ दिनों में केरल के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में सामने आयी घटनाओं ने एक बड़ा उद्देश्य पूरा किया है। उन्होंने केरल में संस्थागत वामपन्थ और उसके नेतृत्व वाली सरकार की वास्तविक वर्गीय प्रकृति को उजागर कर दिया है। इन घटनाओं ने इसके सबसे भोले समर्थकों के सामने भी पूँजी के सामने वामपन्थ के पूर्ण समर्पण और मज़दूर वर्ग की सक्रियता को कुचलने के उसके इरादों को उघाड़कर रख दिया है। आइए, इन काले कारनामों को रोशनी में ले आने वाली इन घटनाओं पर एक नज़र डालते हैं।

सबसे बड़ा ‘ब्लॉकबस्टर इवेंट’ था केरल सरकार द्वारा कोच्चि में आयोजित “इन्वेस्ट केरला ग्लोबल समिट 2025”, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) द्वारा ज़ोरदार (बल्कि पागलपन भरे जोश से भरपूर) समर्थन दिया गया था। यह केरल के अपने “विकास के महाकुम्भ” से कम नहीं था। एक ओर संघ परिवार हमें ‘मलवाले बैक्टीरिया की भारी मात्रा’ वाली गंगा में डुबकी लगाकर मोक्ष पाने के लिए प्रेरित कर रहा था, दूसरी ओर केरल का वामपन्थ पूँजी के सागर में डुबकी लगाकर स्वयं को शुद्ध कर रहा था, वही पूँजी जो मार्क्स के शब्दों में, “सिर से पाँव तक, रोएँ-रोएँ तक ख़ून और गन्दगी में लिथड़ी होती है।”

केरल सरकार ने अपने “विकास महाकुम्भ” को अख़बारों के पहले पन्ने पर (दिल्ली संस्करणों सहित) और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्मों पर विज्ञापित करने के लिए करोड़ों खर्च किये। माकपा कॉरपोरेट जगत को यह दिखाने के लिए बेताब थी कि वे कितने कारोबार-समर्थक और पूँजीपतियों के हितैषी हैं। भाजपा के केन्द्रीय मंत्री, माकपा की राज्य सरकार के मन्त्री और कांग्रेस के विपक्षी नेता ‘इन्वेस्ट केरला’ के मंच पर साथ-साथ विराजमान थे और साथ मिलकर निवेश के लिए लाल कालीन बिछा रहे थे। सब एक-दूसरे से गले मिल रहे थे, हँस रहे थे और एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे थे। मंच पर, गौतम अडानी के बेटे करण अडानी ने नरेन्द्र मोदी और पिनाराई विजयन दोनों की उनकी ‘विकास योजनाओं’ के लिए दिल खोलकर सराहना की। केरल के वामपन्थ के लिए यह वास्तव में एक गौरवपूर्ण क्षण था!!

करोड़ों-करोड़ के अपने विज्ञापन अभियान में, माकपा ने लगातार इस बात पर ज़ोर दिया कि उनके सक्षम नेतृत्व में केरल ने ‘धन्धा करने में आसानी’ के मामले में शानदार प्रगति की है। ‘इन्वेस्ट केरला’ की वेबसाइट घोषित करती है : “कारोबारी सुधारों में केरल सबसे आगे है, 2022 में धन्धा करने की आसानी के मामले में यह शीर्ष उपलब्धि हासिल करने वाला राज्य बन गया है.... 9 शीर्ष उपलब्धियाँ हासिल करके.... और इस तरह यह देश में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाला राज्य बन गया है। ...2024 के धन्धा करने की आसानी के 99% सुधारों को पूरा करके इस मामले में केरल सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन जारी रख रहा है”।

वर्गीय सन्दर्भ में ‘धन्धा करने की आसानी’ का क्या अर्थ है? व्यापार/निवेश का एकमात्र मकसद होता है मुनाफ़ा कमाना, और मज़दूरों से निचोड़ा गया अतिरिक्त मूल्य ही मुनाफ़े का स्रोत होता है। अतिरिक्त मूल्य की उगाही मज़दूर वर्ग के शोषण के अलावा और कुछ नहीं है। इसलिए, ‘धन्धा करने की आसानी’ का सीधा मतलब है ‘मज़दूरों का शोषण करने की आसानी’। ‘धन्धा करने की आसानी’ के आकर्षक जुमले का वर्गीय अर्थों में यही सीधा मतलब है; यह मज़दूरों के शोषण को आसान और बेरोकटोक बनाने के लिए तमाम ज़रूरी इन्तज़ाम करने के अलावा और कुछ नहीं है।

“धन्धा करने की आसानी से सम्बन्धित कारोबारी सुधार”– जिसे 99% पूरा कर लेने का केरल के वामपन्थी दावा करते हैं – वे ऐसे उपाय हैं जिनका मकसद है ‘मज़दूरों के शोषण की आसानी’ के रास्ते में आने वाली हर बाधा को बेरहमी से उखाड़ फेंकना। ख़ुद को बेशर्मी से कम्युनिस्ट कहते हुए भी माकपा गर्व से घोषणा करती है कि उसने केरल में मज़दूर वर्ग के शोषण को सुगम बनाने के लिए सुधार किये हैं, और वे इस मामले में भारत में नंबर 1 हैं!!

मज़दूर वर्ग के शोषण और इसलिए ‘धन्धा करने की आसानी’ की राह में सबसे बड़ी बाधाएँ सर्वहारा वर्ग की चेतना और मज़दूरों की सक्रियता है। इसलिए, ‘मज़दूरों के शोषण को आसान बनाने’ के लिए, माकपा के नेतृत्व वाली वामपन्थी सरकार राज्य में किसी भी मज़दूर सक्रियता या संघर्ष को कुचलना अपना फ़र्ज़ समझती है। केरल में आशा कार्यकर्ताओं के चल रहे संघर्ष को कुचलकर, बदनाम और लांछित करके उन्हें पूँजीपति वर्ग के सामने इस सम्बन्ध में अपनी वफ़ादारी दिखाने का एक बढ़िया मौका मिल गया।

केरल की ‘आशा’ (मान्यता-प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता) कार्यकर्ता 10 फ़रवरी से अपने मानदेय में संशोधन, हर महीने की 5 तारीख़ से पहले इसे जारी करने और सेवानिवृत्ति लाभ के प्रावधान की माँग को लेकर हड़ताल पर हैं। राज्य की आशा कार्यकर्ता सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, लेकिन उन पर काम का भारी बोझ है, कर्मचारियों की संख्या कम है और वेतन (मानदेय) बहुत ही कम है। लेकिन केरल सरकार, माकपा के कुशल नेतृत्व में, उनकी हड़ताल को दबाने और नाकाम करने पर अड़ी है। और कुछ हो भी नहीं सकता। अगर वे ‘इनवेस्ट केरला’ में पूँजीपतियों से किये गये अपने वादों को पूरा करना चाहते हैं, तो उन्हें ‘मज़दूरों के शोषण को आसान बनाने’ के लिए हर मज़दूर आन्दोलन को कुचलना ही होगा।

यानी, जिस वक़्त तमाम बड़े वामपन्थी नेता “विकास महाकुम्भ” में मगन थे, उसी वक़्त माकपा और सरकारी मशीनरी झूठ फैलाने, धमकियाँ देने और हड़ताली स्त्रियों का मनोबल तोड़ने में जुटी थीं। यह कोई नयी बात नहीं है। केरल के वामपन्थियों ने पिछले एक दशक के दौरान केरल में हर स्वतःस्फूर्त मज़दूर या छात्र आन्दोलन को नाकाम करने की कोशिश की है। निजी अस्पताल की नर्सों (केरल में सबसे अधिक शोषित कामगारों में से एक), चाय/कॉफ़ी बागानों के मज़दूरों, निजी इंजीनियरिंग छात्रों और निजी नर्सिंग विद्यार्थियों आदि के स्वतःस्फूर्त और जुझारू आन्दोलनों का जीतोड़ विरोध करने का उनका इतिहास रहा है।

केरल के वामपन्थ और ख़ासकर माकपा इस बात का बहुत ध्यान रखते हैं कि राज्य में मज़दूर वर्ग की सक्रियता को उनकी ट्रेड यूनियनों द्वारा निर्धारित सख़्त सीमाओं से आगे नहीं जाने दिया जाना चाहिए, जो ख़ुद पूँजीपतियों के दलालों के स्तर तक गिर चुकी हैं। केरल के मज़दूरों से उनका साफ़ कहना है: “अगर तुम विरोध करना चाहते हो, तो हम तुम्हें हमारी ट्रेड यूनियनों द्वारा साल में एक या दो दिन आयोजित की जाने वाली औपचारिक, अनुष्ठानिक हड़तालों में ऐसा करने का अवसर देंगे। उनमें भाग लो और घर जाओ। क्योंकि, याद रखो...हम ‘मज़दूरों के शोषण को आसान बनाने’ के लिए कटिबद्ध हैं”!!

तो जैसा कि उचित ही था, आशा कार्यकर्ताओं को कुचलने के प्रयासों में मुख्य भूमिका माकपा की केन्द्रीय ट्रेड यूनियन सीटू के राज्य सचिव एलामारन करीम ने निभायी, जो पिछली वामपन्थी सरकार में उद्योग मन्त्री के रूप में केरल के पूँजीपति वर्ग के लाडले बनकर उभरे हैं। उन्होंने घोषणा की कि हड़ताल “राजनीति से प्रेरित” है (लेनिन का कहना था कि मज़दूर वर्ग की अगुआ पार्टी का कर्तव्य विशुद्ध रूप से आर्थिक संघर्षों में राजनीतिक विषयवस्तु डालना है, और यहाँ सीटू सचिव शिकायत कर रहे हैं कि हड़ताल राजनीति से प्रेरित है!), कि इसका नेतृत्व अराजकतावादी तत्व कर रहे हैं (माकपा के लिए, अब हर पूँजीवाद-विरोधी अराजकतावादी है!) और आशा महिलाओं को गुमराह किया गया है। उन्होंने हड़ताली कर्मचारियों का हर मौके पर तिरस्कार किया और उनके संघर्ष को बदनाम करने की लगातार कोशिश की।

जहाँ एक ओर केरल की वामपन्थी सरकार इस बात पर अड़ी हुई थी कि आशा कार्यकर्ताओं का मासिक मानदेय नहीं बढ़ाया जा सकता, वहीं पिछले हफ्ते उसने केरल लोक सेवा आयोग (पीएससी) के अध्यक्ष और सदस्यों को भारी वेतन वृद्धि देने का फ़ैसला किया। केरल में मौजूदा सरकार के तहत 21 सदस्यों वाला भारी-भरकम पीएससी है, जिनमें सभी राजनीतिक नियुक्तियाँ हैं। ये बहुत फ़ायदे के पद हैं जो आमतौर पर सत्ताधारी दल के क़रीबी लोगों को मिलते हैं। अध्यक्ष का वेतन अधिकतम 2.26 लाख रुपये से बढ़ाकर 3.5 लाख रुपये कर दिया गया, जबकि सदस्यों का वेतन 2.23 लाख रुपये से बढ़ाकर 3.25 लाख रुपये कर दिया गया। ख़ुद को “कम्युनिस्ट-मार्क्सवादी” कहने वाले केरल के वामपन्थी आशा कार्यकर्ताओं का वेतन 7000 रुपये से एक पैसा नहीं बढ़ाने पर अड़े हुए हैं। लेकिन वे पीएससी में बैठे अपने चमचों पर 3.25 लाख रुपये मासिक लुटाने के लिए तैयार हैं।

वामपन्थी सरकार यहीं नहीं रुकी। अगले ही दिन उन्होंने श्री के.वी. थॉमस, जो केरल सरकार द्वारा सृजित ‘दिल्ली में केरल के विशेष प्रतिनिधि’ नामक वाहियात पद पर आसीन हैं, के यात्रा भत्ते को 5 लाख से 11.31 लाख रुपये करने का प्रस्ताव रख दिया! थॉमस कई दशकों तक कांग्रेस से जुड़े रहे, लेकिन संसदीय सीट का टिकट न मिलने के बाद कांग्रेस से छलाँग मारकर माकपा में आ गये। केरल में यह कोई ख़बर नहीं है, वामपन्थ कांग्रेस और भाजपा छोड़ने वालों का पसंदीदा ठिकाना बन गया है। संसदीय वामपन्थ का जिस हद तक पतन हुआ है, उसके बाद ऐसा भला क्यों नहीं होगा? यात्रा भत्ते में यह वृद्धि थॉमस को पहले से मिल रहे 12.50 लाख रुपये के मानदेय के अलावा है। साथ ही उनके पास एक निजी सचिव, सहायक, कार्यालय परिचारक और ड्राइवर भी है, जिसका भुगतान राज्य सरकार करती है।

केरल के वामपन्थियों का चरित्र इससे अधिक नंगा नहीं हो सकता – मज़दूरों को कुचलो, उन्हें उचित मज़दूरी और काम करने की स्थितियाँ भी न दो, पूँजीपतियों के सामने लम्बलेट हो जाओ, उनके मुनाफ़ा निचोड़ने की राह से हर बाधा को हटाओ, सत्ता पर अपनी पकड़ बनाये रखने के लिए चापलूस सहयोगियों और दूसरी पार्टियों से आये दलबदलुओं पर जनता के पैसे उड़ाओ। और साथ ही ख़ुद को ‘मार्क्सवादी’ कहते रहो!!

लेकिन असली कमाल तो अभी बाक़ी था। जब यह सब चल रहा था, उसी समय, पक्के अवसरवादी और केरल में उच्च मध्य वर्ग के लाडले शशि थरूर के कांग्रेस के राज्य नेतृत्व के साथ मतभेद उभर रहे थे। माकपा की मशीनरी ने मौक़ा ताड़ा और फ़ौरन थरूर पर डोरे डालना शुरू कर दिया। अब दृश्य में प्रवेश हुआ माकपा की केन्द्रीय समिति के सदस्य श्री ए.के. बालन का, जो केरल के वामपन्थियों में सबसे काबिल कामदेव के रूप में उभरे हैं। कुछ महीने पहले, संघ परिवार का एक प्रमुख नेता सन्दीप वारियर, जो अपने ज़हरीले साम्प्रदायिक भाषणों के लिए बदनाम था, पलक्काड़ निर्वाचन क्षेत्र से पार्टी टिकट ने मिलने पर भाजपा से अलग हो गया। बालन ने तुरन्त उसका माकपा में स्वागत किया और कहा कि वे बहुत अच्छे कॉमरेड बनेंगे! इस बार, उन्होंने फ़ौरन घोषणा कर दी कि थरूर ‘विश्व स्तर पर प्रसिद्ध बुद्धिजीवी’ और ‘क्रान्तिकारी’ हैं!! इसके बाद माकपा ने ‘जनवादी नौजवान सभा’ के बेचारे नेताओं को थरूर के घर भेजा और उन्हें अपने द्वारा आयोजित ‘स्टार्टअप फ़ेस्ट’ में आमन्त्रित किया। ये अलग बात है कि घुटे हुए अवसरवादी थरूर ने जल्दी से पार्टी छोड़ने के किसी भी प्रलोभन का विरोध किया और अधिकतम लाभ पाने के लिए सही समय का इन्तज़ार कर रहे हैं (सम्भवतः सही समय पर वह भाजपा में शामिल हो जायें)।

ये और इसी तरह की कई अन्य घटनाएँ हमें संसदीय वामपन्थ के बारे में क्या बताती हैं? माकपा के नेतृत्व में भारत के संसदीय वामपन्थ ने दशकों पहले मार्क्सवाद को तिलांजलि दे दी थी और सामाजिक-जनवाद की राह पर चल पड़ा था। लेनिन ने कहा था कि सामाजिक-जनवाद मज़दूर वर्ग के अन्दर घुसा हुआ भितरघाती है, जो मज़दूर वर्ग की पार्टी की आड़ में बुर्जुआ नीतियों को अंजाम देता है। वामपन्थ का यह भितरघाती चरित्र लोगों के सामने हर दिन बेनक़ाब हो रहा है। पूँजी के सामने वे पूरी तरह दण्डवत हो चुके हैं। सत्ता में रहने पर वे मज़दूरों के शोषण को सुगम बनाकर पूँजीपति वर्ग के कारिन्दे की भूमिका निभाते हैं। पार्टी ढाँचे और ट्रेड यूनियनों का इस्तेमाल करके वे यह सुनिश्चित करते हैं कि मज़दूर वर्ग नियन्त्रण में रहे।

यही कारण है कि आशा कर्मियों की हड़ताल पर सबसे उग्र हमला सीटू नेताओं की ओर से हुआ। सामाजिक-जनवादियों के बीच के श्रम विभाजन के अनुसार, वामपन्थी सरकार पूरी तरह से नवउदारवादी नीतियों को लागू करके पूँजीपति वर्ग की सेवा करती है। उसके ट्रेड यूनियन मोर्चे के रूप में, सीटू का ‘वर्गीय कर्तव्य’ यह सुनिश्चित करना होता है कि मज़दूरों पर लगाम कसी रहे और वे इन नीतियों का विरोध क़तई न कर पायें। इसलिए, कोई भी हड़ताल जो सीटू की हड़तालों के ‘अनुष्ठानिक’ दायरे से आगे बढ़ती है, पूँजीपति वर्ग और सामाजिक-जनवाद के लिए ख़तरा बन जाती है। ऐसे में कोई आश्चर्य नहीं कि सीटू के राज्य उपाध्यक्ष हर्षकुमार ने हड़ताल की एक महिला नेता को “संक्रामक रोग फैलाने वाला कीट” कहकर पुकारा।

स्वाभाविक ही है कि सीटू का एक नेता, जो पूँजी और बुर्जुआ वर्ग की रक्षा के लिए मज़दूर वर्ग को नियन्त्रित करने के अपने कर्तव्य से बँधा है, हड़ताली आशा कार्यकर्ताओं को ‘कीट’ के रूप में देखता है। लेकिन वे जो ‘संक्रामक रोग’ फैला रही हैं, उसे मज़दूर वर्गीय चेतना कहा जाता है। और वह दिन बहुत दूर नहीं जब अवसरवादी, संसदीय वामपन्थ इस ‘रोग’ से मारा जायेगा और ये ‘कीट’ मानवता को इस मरणासन्न व्यवस्था से मुक्त कर देंगे।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 24

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

● अभिनव

अध्याय – 1

पूँजी के परिपथ (सर्किट)

इस खण्ड के प्रकाशकीय (*'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक में प्रकाशित – सं.*) में हम पढ़ चुके हैं कि मार्क्स का विश्लेषण *पूँजी* के दूसरे खण्ड में उत्पादन के क्षेत्र से संचरण के क्षेत्र में जाता है। मार्क्स ने *पूँजी* के पहले खण्ड में ही बताया था कि पूँजी संचरण *में* पूँजी बनती है, लेकिन संचरण *से* पूँजी नहीं बनती। यानी, वह मुद्रा की ऐसी मात्रा जो अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा कर सकती है, संचरण के क्षेत्र में बनती है, लेकिन वह संचरण के क्षेत्र में होने वाली गतिविधि से पूँजी में तब्दील नहीं होती क्योंकि मूल्य व बेशी मूल्य उत्पादन के क्षेत्र में पैदा होता है, विनिमय या संचरण के क्षेत्र में नहीं। लेकिन संचरण के क्षेत्र में होने वाला पहला विनिमय ही उत्पादन में बेशी मूल्य के पैदा होने की पूर्वशर्तों को पूरा करता है। मार्क्स दूसरे खण्ड के पहले हिस्से में पूँजी के परिपथों पर विस्तार में चर्चा करते हैं। इसी प्रक्रिया में वे उन रूपों की चीर-फाड़ करते हैं जो पूँजी अपने संचरण की समूची प्रक्रिया में लेती है। हम इस पुस्तक के दूसरे खण्ड के इस पहले अध्याय में मार्क्स के इस विश्लेषण को समझने से ही शुरुआत करेंगे।

पूँजी के संचरण के क्षेत्र की विशिष्टता क्या है? यह विशिष्टता है वे भिन्न रूप जो पूँजी अपने उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में ग्रहण करती है। ये रूप हैं **मुद्रा-पूँजी, माल-पूँजी** और **उत्पादक-पूँजी**। इस प्रक्रिया में पूँजी **दो प्रमुख क्षेत्रों** से गुज़रती है : **उत्पादन का क्षेत्र** और **संचरण का क्षेत्र**। संचरण के क्षेत्र में पूँजी मुद्रा-पूँजी से माल-पूँजी और माल-पूँजी से मुद्रा-पूँजी में रूपान्तरित होती है। यह रूपान्तरण माल और मुद्रा के बीच होने वाले विनिमय के ज़रिये सम्पन्न होता है। वहीं दूसरी ओर, उत्पादन के क्षेत्र में पूँजी उत्पादक-पूँजी का स्वरूप ग्रहण करती है। यहाँ उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति के रूप में मौजूद पूँजी का भौतिक तौर पर रूपान्तरण हो जाता है और वह उत्पादित माल का रूप लेती है, लेकिन ऐसे माल का रूप जिसका मूल्य उसके उत्पादन में ख़र्च हुई श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों के कुल मूल्य से ज़्यादा होता है। यानी उसका मूल्य-संवर्धन हो चुका होता है।

मार्क्स बताते हैं कि इनमें से संचरण के क्षेत्र में होने वाले रूपान्तरण महज़ **औपचारिक रूपान्तरण** होते हैं। वजह यह कि इसमें बस माल-पूँजी विनिमय की प्रक्रिया के द्वारा मुद्रा-पूँजी में तब्दील हो जाती है और मुद्रा-पूँजी विनिमय के ज़रिये माल-पूँजी में तब्दील हो जाती है। उसके मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं आता है। यानी, यह औपचारिक बदलाव केवल रूप के धरातल पर होता है। इसके विपरीत, उत्पादन के क्षेत्र में होने वाला रूपान्तरण महज़ औपचारिक नहीं होता है, बल्कि सारभूत होता है क्योंकि इस प्रक्रिया में न सिर्फ उत्पादन के कारकों का भौतिक रूपान्तरण होता है, बल्कि बेशी मूल्य के पैदा होने के साथ उनके मूल्य में वृद्धि हो जाती है।

मार्क्स वास्तव में जिस चीज़ को **औद्योगिक पूँजी का परिपथ (सर्किट)** बताते हैं वह दरअसल संचरण और उत्पादन के क्षेत्रों में पूँजी द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विभिन्न रूपों की सम्पूर्णता और एकता को प्रदर्शित करता है। औद्योगिक पूँजी का यह परिपथ निरन्तर जारी रहता है, लेकिन विश्लेषण के लिए मार्क्स इन्हें पूँजी द्वारा लिए जाने वाले तीनों रूपों के अनुसार तीन हिस्सों में तोड़कर पेश करते हैं : मुद्रा-पूँजी का सर्किट, उत्पादक-पूँजी का सर्किट और माल-पूँजी का सर्किट। पहले दो सर्किटों का इस्तेमाल *पूँजी* के दूसरे खण्ड में मार्क्स पूँजी के टर्नओवर की व्याख्या करने के लिए करते हैं, जबकि तीसरे सर्किट, यानी माल-पूँजी के सर्किट के ज़रिये मार्क्स दूसरे खण्ड के तीसरे हिस्से में उन स्थितियों को स्पष्ट करते हैं जिनकी मौजूदगी में समूची सामाजिक पूँजी का पुनरुत्पादन हो सकता है।

मुद्रा-पूँजी का परिपथ

मुद्रा-पूँजी का परिपथ कुछ बुनियादी अर्थों में सबसे महत्वपूर्ण है। इस सर्किट को समझना क्यों महत्वपूर्ण है? मार्क्स विस्तार से इसके महत्व के बारे में बताते हैं। सबसे पहले हमें याद कर लेना चाहिए कि आम तौर पर पूँजी का सूत्र क्या है? हमने इस पुस्तक के पहले खण्ड में ही देखा था कि आम तौर पर, पूँजी का सामान्य सूत्र यह था :

M – C – M'

मुद्रा – माल – मुद्रा'

यानी, पूँजीपति पूँजी लगाता है, माल ख़रीदता है, और फिर माल को उससे ज़्यादा क़ीमत पर बेचता है, जितनी क़ीमत पर उसने उसे ख़रीदा था। यानी, सस्ता ख़रीदना और महँगा बेचना। यह आम तौर पर पूँजी का सूत्र है। महज़ इस सूत्र से ही अभी हम बेशी मूल्य के स्रोत को और इस प्रकार मुनाफ़े के स्रोत को नहीं जान पाते हैं। यह सूत्र केवल संचरण के क्षेत्र में होने वाले औपचारिक रूपान्तरणों को ही अभिव्यक्त करता है। यानी, मुद्रा द्वारा माल का रूप लेना और फिर माल द्वारा मुद्रा का रूप लेना। यहाँ अभी हमें बेशी मूल्य के पैदा होने की पूरी प्रक्रिया के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता है क्योंकि इस सूत्र में उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले सारभूत परिवर्तनों के बारे में हमें अभी कुछ नहीं बताया जाता है, यानी बेशी मूल्य के उत्पादन के बारे में, मूल्य-संवर्धन के बारे में कुछ नहीं बताया जाता है। वह हमें केवल औद्योगिक पूँजी के समूचे परिपथ को देखकर ही पता चलता है। मार्क्स पूँजी के इस आम सूत्र को औद्योगिक पूँजी के लिए विस्तारित करते हैं। अब यही सूत्र इस प्रकार दिखता है :

M – C … P … C' – M'

मुद्रा – माल ... उत्पादन ... माल' – मुद्रा'

इस सर्किट में हम पूँजी के ही औपचारिक रूपान्तरणों और सारभूत रूपान्तरण को देखते हैं, जो संचरण के अलग-अलग चरणों और उत्पादन के चरण में अलग-अलग रूप ग्रहण करती है। यह परिपथ मुद्रा-पूँजी से ही शुरू होता है और फिर मुद्रा-पूँजी पर ही ख़त्म होता है। इस रूप में यह पूँजीवादी उत्पादन के बुनियादी लक्ष्य को अभिव्यक्त करता है : मुनाफ़ा हासिल करना, पूँजी की एक निश्चित मात्रा का निवेश कर उस पर मुनाफ़ा प्राप्त करना। C और P के बीच में और फिर P और C' के बीच में मौजूद बिन्दु यानी '…' संचरण की प्रक्रिया में पड़ने वाले उत्पादन के विघ्न या रुकावट को दिखलाते हैं। यह एक अपरिहार्य बाधा है, जिससे पूँजी बच नहीं सकती क्योंकि बेशी मूल्य का उत्पादन संचरण यानी ख़रीद-फ़रोख़्त और बिकवाली में आने वाली इसी रुकावट के दौरान होता है।

पूँजीपति तो ज़रूर ही चाहेगा कि वह बस मालों को सस्ता ख़रीदे और फिर उन्हीं मालों को महँगा बेच दे! लेकिन सामाजिक तौर पर पूँजी के लिए ऐसा सम्भव नहीं होता।

व्यापारिक पूँजीपति को ऐसा *दिखता* है कि वह वास्तव में बस मालों को सस्ता ख़रीद रहा है और फिर उन्हें महँगा बेच रहा है। उसे लगता है कि उसके मुनाफ़े का स्रोत सस्ता ख़रीदने और महँगा बेचने की उसकी चतुराई है। लेकिन ऐसा सिर्फ़ इसलिए *दिखता* है क्योंकि औद्योगिक पूँजीपति उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति का उत्पादक उपभोग करके, यानी उत्पादन में उन्हें ख़र्च करके, बेशी मूल्य का उत्पादन और विनियोजन कर चुका है और वह अपने बेशी मूल्य का ही एक हिस्सा व्यापारिक पूँजीपति को उसके व्यापारिक मुनाफ़े या कमीशन के तौर पर देता है। नतीजतन, व्यापारिक पूँजीपति को अपनी पूँजी का परिपथ केवल M – C – M' के रूप में ही नज़र आता है। साधारण माल उत्पादन की स्थिति में व्यापारी और साधारण माल उत्पादक का रिश्ता अलग है। यहाँ व्यापारी साधारण माल उत्पादक से उसके माल को असमान विनिमय के रिश्ते के आधार पर उसके मूल्य से कम मूल्य पर ख़रीदता है, जो कि साधारण माल उत्पादकों के तबाह करने वाले तमाम कारकों में से एक होता है। यहाँ अभी श्रमशक्ति माल नहीं बनी है, श्रम प्रक्रिया पूँजी के मातहत नहीं आयी है, बेशी मूल्य की श्रेणी ही अभी अप्रासंगिक है क्योंकि उसकी परिभाषा ही मूल्य की उस मात्रा के उत्पादन से सम्भव होती है जो कि श्रमशक्ति के मूल्य से ऊपर होता है। लेकिन पूँजीवादी माल उत्पादन की स्थिति में व्यापारिक पूँजीपति उद्यमी पूँजीपति से उसके द्वारा विनियोजित बेशी मूल्य का एक हिस्सा लेता है। यह औद्योगिक पूँजीपति के लिए फ़ायदेमन्द होता है क्योंकि इससे संचरण की लागत कम हो जाती है। वजह यह कि व्यापारिक पूँजीपति बहुत-से पूँजीपतियों की माल-पूँजी को बेचकर उसका मुद्रा के रूप में वास्तवीकरण करता है और अगर हर पूँजीपति को अपना माल स्वयं बेचना पड़ता तो उसकी लागत कहीं ज़्यादा होती। साथ ही, तमाम पूँजीपतियों को पहले अपना माल पूरा बिकने का इन्तज़ार करना पड़ता और उसके बाद ही वह पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को शुरू कर पाता। व्यापारिक पूँजीपति इस सीमा को समाप्त कर देता है, बहुत-से उद्यमी पूँजीपतियों से उनकी माल-पूँजी को थोक में ख़रीदता है, उसका वास्तवीकरण करता है और बदले में मज़दूरों को लूटकर हासिल किये गये बेशी मूल्य का एक हिस्सा हस्तगत करता है। इसके बावजूद, औद्योगिक पूँजीपति और आम तौर पर उद्यमी पूँजीपति फ़ायदे में रहता है, क्योंकि वैयक्तिक संचरण लागत से पूँजीपति वर्ग में समाजीकृत संचरण की लागत कहीं कम होती है। इसे मार्क्स पूँजीपति वर्ग के बीच मौजूद श्रम-विभाजन कहते हैं, जिसके तहत मज़दूरों का शोषण कर लूटे गये बेशी मूल्य का पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग हिस्सों में पुनर्वितरण मात्र होता है। बहरहाल, यह स्पष्ट है कि व्यापारिक पूँजीपति को केवल M – C –M' ही नज़र आता है क्योंकि वह उद्यमी पूँजीपति नहीं है और उत्पादन के क्षेत्र से उसका कोई सीधा ताल्लुक नहीं है।

सूदखोर पूँजीपति को तो बीच में माल ख़रीदने की मंज़िल से भी नहीं गुज़रना पड़ता! यानी ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ मुद्रा को माल में तब्दील होने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती! वह तो मानो बस पैसे से ज़्यादा पैसा बना रहा होता है! वह उधार लेने वाले को मुद्रा की एक मात्रा देता है और बदले में एक निश्चित समय के बाद उधार लेने वाला उसे मुद्रा की उससे ज़्यादा मात्रा उसे वापस कर देता है, यानी ब्याज समेत मूलधन वापस कर देता है। देखने में ऐसा लगता है कि पैसे से ही ज़्यादा पैसा बनाया जा रहा है। उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रना तो दूर, बीच में मुद्रा को माल का रूप लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती! सूदखोर पूँजी का सूत्र हमारे सामने M – M' के रूप में प्रकट होता है। यह आँखों को सबसे ज़्यादा धोखा देने वाला, यानी सबसे ज़्यादा विचारधारात्मक रूप है। लेकिन जब हम इस मसले को थोड़ा क़रीबी से देखते हैं तो हम पाते हैं ब्याज का स्रोत भी मज़दूरों की श्रमशक्ति के शोषण के ज़रिये पैदा होने वाला बेशी मूल्य ही है। उधार लेने वाला यदि मज़दूर है, तो वह अपनी मज़दूरी से ही उधार ब्याज समेत वापस करता है। यानी यहाँ सूदखोर का मुनाफ़ा मज़दूर की मज़दूरी से कटौती के तौर पर आता है। मज़दूरी स्वयं परिवर्तनशील पूँजी से ही आती है, जो कि पूँजीपति मज़दूर को देता है और यह पूँजी और कुछ नहीं बल्कि मृत श्रम ही है। अगर उधार लेने वाला पूँजीपति है, तो वह उधार लेकर उसका निवेश करता है, उत्पादन के साधन ख़रीदता है, श्रमशक्ति ख़रीदता है, इन मालों का उत्पादक उपभोग करता है और नतीजतन बेशी मूल्य का उत्पादन और विनियोजन करता है। अन्ततः वह अपने द्वारा विनियोजित बेशी मूल्य से ही सूदखोर पूँजीपति को ब्याज देता है। हम यहाँ प्राक्-पूँजीवादी व्यवस्था में सूदखोर और साधारण माल उत्पादक के रिश्ते पर विस्तार में नहीं जायेंगे। उसके बारे में हम इस पुस्तक के पहले खण्ड में चर्चा कर चुके हैं। अभी बस इतना याद दिला देना है कि सूदखोरी द्वारा लूट भी माल उत्पादकों की तबाही-बरबादी को त्वरण देने वाला एक अहम कारक होता है। बहरहाल, इतना स्पष्ट है कि सूदखोर पूँजी का रूप यानी M – M' सबसे ज़्यादा धोखा देने वाला, यानी विचारधारात्मक हैं जहाँ मुद्रा में कोई ऐसी दैवीय शक्ति अन्तर्निहित प्रतीत होती है, जो स्वयं ही अधिक मुद्रा पैदा कर रही है।

लेकिन जैसे ही हम मसले की वैज्ञानिक चीर-फाड़ करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापारिक मुनाफ़े का स्रोत भी मज़दूरों के शोषण से पैदा होने वाला बेशी मूल्य है और ब्याज या सूद का स्रोत भी मज़दूरों के शोषण से पैदा होने वाला बेशी मूल्य ही है। बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया को हम औद्योगिक पूँजी के परिपथ में देखते हैं। इसी परिपथ को मार्क्स M – C … P … C' – M' के रूप में पेश करते हैं। अब इस परिपथ को हम चरणबद्ध प्रक्रिया में समझते हैं।

(पेज 17 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 16 से आगे)

पहला चरण : M - C

सबसे पहले पूँजीपति मुद्रा की एक निश्चित मात्रा के साथ श्रम बाज़ार और माल बाज़ार में प्रकट होता है। यहाँ वह मुद्रा से निश्चित प्रकार के मालों को ख़रीदता है, यानी उसकी मुद्रा माल में तब्दील हो जाती है। ये माल क्या हैं? ये माल हैं उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति। यह संचरण के क्षेत्र में होने वाला पहला औपचारिक रूपान्तरण है। स्पष्ट है कि मुद्रा-पूँजी का परिपथ मुद्रा से शुरू होता है और नतीजतन संचरण के क्षेत्र में ही शुरू हो सकता है। M – C संचरण के क्षेत्र में होने वाले इस पहले रूपान्तरण को दर्शाता है, जिसमें कि पूँजीपति अपने हाथ में मौजूद मुद्रा-पूँजी के ज़रिये उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति को ख़रीदता है। यानी, M – C को इस रूप में विघटित करके या तोड़ कर देखा जा सकता है : M – L और M – mp, जहाँ L श्रमशक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जबकि mp उत्पादन के साधनों का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इस पहली कार्रवाई को हम विस्तारित करके निम्न रूप में दिखला सकते हैं :

$$\mathbf{M - C < ^{L}_{mp}}$$

ऐसे में, मुद्रा-पूँजी के पूरे परिपथ को निम्न रूप में संशोधित करके लिखा जा सकता है:

$$\mathbf{M - C < ^{L}_{mp} \dots P \dots C' - M'}$$

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूँजीपति पहले उत्पादन के साधनों यानी मशीनरी, कच्चे माल, कारख़ाने की इमारत आदि का इन्तज़ाम करता है और उसके बाद ही श्रमशक्ति ख़रीदता है। कारण स्पष्ट है : श्रमशक्ति को ख़रीदने के बाद, यानी मज़दूरों को भाड़े पर रखने के बाद वह उन्हें ख़ाली नहीं बैठे रहने दे सकता है। वह एक निश्चित समय के लिए एक निश्चित 'श्रम की क़ीमत' यानी मज़दूरी (पूँजीवादी समाज में श्रमशक्ति का मूल्य यही रूप लेता है, जैसा कि हम इस पुस्तक के पहले खण्ड में देख चुके हैं) पर मज़दूरों को भाड़े पर रखता है। ऐसे में, जब वह मज़दूरों को भाड़े पर रखता है तो उसके पास उत्पादन के सभी साधन उत्पादक उपभोग के लिए तैयार होने चाहिए।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि पूँजीपति उत्पादन की जिस शाखा में पूँजी का निवेश करता है, उसमें उत्पादन की तकनोलॉजिकल स्थितियों के अनुसार ही वह ख़रीदे जाने वाले उत्पादन के साधनों के परिमाण व श्रमशक्ति के परिमाण का अनुपात, यानी उत्पादन के साधनों की मात्रा व मज़दूरों की संख्या का अनुपात निर्धारित करता है। उत्पादन की हर शाखा में तकनीकी विकास और श्रम की उत्पादकता के दिये गये औसत स्तर के अनुसार यह अनुपात निर्धारित होता है। यानी, उसकी ख़रीद मनमाने आधार पर नहीं निर्धारित होती है, बल्कि उसकी कुल मात्रा और उसके तत्वों का आपसी अनुपात उसकी पूँजी के परिमाण, उद्योग की उस शाखा की तकनीकी स्थिति व श्रम की उत्पादकता से तय होता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "इस प्रकार $\mathbf{M - C < ^{L}_{mp}}$ महज़ एक गुणात्मक सम्बन्ध को नहीं दिखलाता है जिसमें मुद्रा की एक निश्चित मात्रा, मसलन 422 पाउण्ड, को उत्पादन के साधनों में और श्रमशक्ति में रूपान्तरित किया जाता है, बल्कि यह श्रमशक्ति L और उत्पादन के साधनों mp पर ख़र्च होने वाली मुद्रा के हिस्सों के बीच के एक परिमाणात्मक सम्बन्ध को भी दिखलाता है, और यह अनुपात शुरू से ही भाड़े पर रखे जाने वाले मज़दूरों द्वारा दिये जाने वाले अतिरिक्त या बेशी श्रम से निर्धारित होता है।
>
> "मिसाल के तौर पर, अगर किसी कताई मिल में पचास मज़दूरों की साप्ताहिक मज़दूरी 50 पाउण्ड बैठती है, तो उत्पादन के साधनों पर 372 पाउण्ड ख़र्च करना आवश्यक होगा, अगर 3000 घण्टों का कार्य-सप्ताह (*यानी अगर 50 मज़दूर हफ्ते में 6 दिन रोज़ 10 घण्टा काम करें – अनु.*), जिसमें से 1500 घण्टे बेशी श्रम के हैं, 372 पाउण्ड बराबर मूल्य के उत्पादन के साधनों को धागे में रूपान्तरित करता है...
>
> "...*दूसरे शब्दों में कहें तो उत्पादन के साधन मात्रा में श्रम की उस मात्रा को सोखने के लिए पर्याप्त होने चाहिए जिन्हें उत्पादों में तब्दील किया जाना है।* अगर पर्याप्त उत्पादन के साधन मौजूद नहीं होंगे, तो ख़रीदार उस बेशी श्रम का कोई इस्तेमाल नहीं कर पायेगा जो उसके पास मौजूद है, उसका इस्तेमाल करने के उसके अधिकार का कोई नतीजा नहीं निकलेगा। अगर उत्पादन के साधन उपयोग करने योग्य श्रम से अधिक मात्रा में मौजूद होंगे, तो ये श्रम द्वारा सन्तृप्त नहीं हो पायेंगे और उत्पादों में तब्दील नहीं किये जा सकेंगे।" (मार्क्स, कार्ल. 1992. *पूँजी,* खण्ड-2, पेंगुइन, लन्दन, अंग्रेज़ी संस्करण, पृ. 110-111, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

इस पहले चरण के पूरे होने के साथ ही पूँजीपति के हाथों में वे सभी चीज़ें होती हैं जो उसके मुनाफ़े के लिए ज़रूरी होती हैं : उसके पास उत्पादन के साधन होते हैं जिन्हें उत्पादों में, यानी मालों में, तब्दील किया जाना होता है; उसके पास श्रमशक्ति होती है जो स्वयं अपने पुनरुत्पादन में लगने वाले श्रम की मात्रा से ज़्यादा श्रम अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में दे सकती है और इस प्रकार अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य, बेशी मूल्य, पैदा कर सकती है। उसके द्वारा निवेशित मुद्रा-पूँजी रूपान्तरित होकर अब एक ऐसे रूप में उसके पास मौजूद है, जिनके उत्पादक उपभोग का नतीजा होगा बेशी मूल्य का उत्पादन। यानी, वह अब उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति के रूप में उसके पास मौजूद है। इसे ही मार्क्स *उत्पादक पूँजी (P)* की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार जब हम $\mathbf{M - C < ^{L}_{mp}}$ के इस चरण को देखते हैं और इसे पूँजी के समूचे परिपथ के अंग के तौर पर और इस परिपथ के अन्य चरणों के साथ इसके सम्बन्धों के साथ देखते हैं, तो हम इसे महज़ आम तौर पर माल संचरण के एक चरण के रूप में नहीं देखते हैं जिसमें कि मुद्रा की एक मात्रा उतने मूल्य के मालों का रूप ले रही होती है। वास्तव में, यहाँ हम पूँजी मूल्य (capital value) यानी एक निश्चित मूल्य रखने वाली पूँजी को मुद्रा-पूँजी से उत्पादक-पूँजी में तब्दील होते हुए देखते हैं। **यहाँ वह कौन-सी चीज़ है जो मुद्रा की एक निश्चित मात्रा पूँजी में तब्दील कर देती है? यहाँ साधारण माल संचरण से भिन्न अगर मुद्रा पूँजी के रूप में प्रकट हो रही है तो क्यों?** इसे समझना यहाँ महत्वपूर्ण है।

एक निश्चित मूल्य की पूँजी या 'पूँजी मूल्य' यहाँ मुद्रा के रूप में प्रकट हो रही है। मुद्रा के रूप में पूँजी यहाँ वही चीज़ें कर सकती है जो कि मुद्रा के प्रकार्य होते हैं, यानी ख़रीदना व भुगतान के माध्यम की भूमिका अदा करना। यानी, मुद्रा-पूँजी वही काम कर सकती है, जिसकी इजाज़त मुद्रा के प्रकार्य (functions) उसे देते हैं। यहाँ मुद्रा-पूँजी में ये प्रकार्य पूरे करने की क्षमता इस वजह से नहीं है कि वह पूँजी है, बल्कि इस वजह से है क्योंकि वह मुद्रा रूप में है। तो फिर वह कौन-सी चीज़ है, जो मुद्रा की एक निश्चित मात्रा को यहाँ पूँजी में तब्दील कर रही है?

मुद्रा से विनिमय कर पूँजीपति मज़दूर की श्रमशक्ति को ख़रीदता है, जो स्वयं एक माल बन चुकी है। वैसे तो यह मुद्रा का माल में रूपान्तरण है, जो कि साधारण माल संचरण में भी होता है। लेकिन यहाँ पर जो माल ख़रीदा जा रहा है और फिर उसका जिस लक्ष्य के लिए उपयोग किया जा रहा है, वह मुद्रा की इस मात्रा को पूँजी में तब्दील कर देता है। मज़दूर के लिए यह विनिमय वास्तव में साधारण माल संचरण का ही रूप ग्रहण करता है। जो प्रक्रिया पूँजीपति के नज़रिये से M – C के रूप में, या M – L के रूप में प्रकट होती है, वह मज़दूर के लिए L – M या C – M के रूप में प्रकट होती है। मज़दूर अपनी श्रमशक्ति को बेचता है, जो कि उसका विशिष्ट माल है। वह उसके बदले में मिलने वाली मज़दूरी से अपने लिए आवश्यक मालों को ख़रीदता है। यानी वह दूसरे रूपान्तरण को इस रूप में अंजाम देता है : M – C। नतीजतन, उसके लिए संचरण का रूप वही हुआ जो साधारण माल संचरण का रूप होता है: C(L) – M – C।

पूँजीपति की मुद्रा की इस विशिष्ट मात्रा को जो चीज़ पूँजी बनाती है, वह है उसका उन मालों में रूपान्तरण, जो अपने प्राकृतिक या नैसर्गिक रूप में *उत्पादक पूँजी* के तत्वों का निर्माण करते हैं, यानी उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति, जिनके उत्पादक उपभोग का नतीजा होता है मूल पूँजी मूल्य ही नहीं बल्कि बेशी मूल्य से लदे माल का उत्पादन। इसमें भी सबसे अहम पहलू है पूँजीपति द्वारा श्रमशक्ति का ख़रीदा जाना क्योंकि उत्पादन की प्रक्रिया में सक्रिय तत्व श्रम होता है, न कि उत्पादन के साधन। यह श्रमशक्ति ही है जो अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में जीवित श्रम देती है जो कि उत्पादन के साधनों का उत्पादक उपभोग कर उन्हें ऐसे मालों में तब्दील कर देते हैं, जिनका मूल्य श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों के कुल मूल्य से ज़्यादा होता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "*M – L मुद्रा पूँजी के उत्पादक पूँजी में तब्दील होने का सबसे चारित्रिक क्षण होता है, क्योंकि यह वह सारभूत पूर्वशर्त है जिसके बिना मुद्रा-रूप में निवेशित मूल्य वास्तव में पूँजी में रूपान्तरित हो ही नहीं सकता, यानी ऐसे मूल्य में जो बेशी मूल्य पैदा करता हो।* M – mp केवल M – L के ज़रिये ख़रीदी गयी श्रम की मात्रा के वास्तवीकरण के लिए ज़रूरी है। इसीलिए M – L को पहले खण्ड के दूसरे भाग, 'मुद्रा का पूँजी में रूपान्तरण' में इस दृष्टि से प्रस्तुत किया गया था।" (*वही,* पृ. 113, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यहाँ ग़ौरतलब है कि श्रमशक्ति का मुद्रा से विनिमय अपने आप में किसी भी अन्य माल के मुद्रा से विनिमय से भिन्न नहीं है। जो चीज़ इस विनिमय को विशिष्ट बनाती है, वह स्वयं विनिमय की कार्रवाई नहीं है, बल्कि यह बात है कि श्रमशक्ति की एक माल में तब्दील हो चुकी है, लेकिन एक ऐसे माल में जिसकी विशिष्ट क्षमता है अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में अपने मूल्य से भी ज़्यादा मूल्य पैदा करना। मार्क्स इस बात को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं:

> "यह एकदम महत्वहीन प्रश्न है कि, जहाँ तक मुद्रा का प्रश्न है, तो वह किसी प्रकार के मालों में रूपान्तरित हो रही है। मुद्रा सभी मालों का सार्वभौमिक समतुल्य है, जो अपनी क़ीमतों में पहले से ही यह दिखलाते हैं कि आदर्श रूप में वे मुद्रा की एक विशिष्ट राशि का प्रतिनिधित्व करते हैं, मुद्रा में रूपान्तरित होने की अपेक्षा रखते हैं, और केवल वह रूप प्राप्त करते हैं जिसमें कि मुद्रा से अदला-बदली कर वे उनके स्वामी के लिए उपयोग मूल्य में बदले जा सकते हैं। इस प्रकार एक बार जब श्रमशक्ति बाज़ार में एक माल के रूप में पायी जाती है जिसकी बिक्री श्रम के लिए भुगतान के रूप में, यानी मज़दूरी-रूप में होती है, तो इसकी ख़रीद-फ़रोख़्त किसी भी अन्य माल की ख़रीद-फ़रोख़्त से अधिक असाधारण नहीं होती। *जो बात यहाँ चारित्रिक विशिष्टता रखती है वह यह नहीं है कि श्रमशक्ति नामक माल को ख़रीदा जा सकता है, बल्कि यह तथ्य है कि श्रमशक्ति एक माल के रूप में प्रकट होती है।*" (*वही,* पृ. 114, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यह बात समझना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति को ख़रीदने के साथ पूँजीपति उत्पादन की वस्तुगत स्थितियों (यानी उत्पादन के साधनों) और उत्पादन की वैयक्तिक स्थितियों (यानी श्रमशक्ति) को एक जगह लाता है, जिसके साथ उत्पादन सम्भव होता है। बिना उत्पादन के साधनों के मज़दूर अपने श्रम का वस्तुकरण नहीं कर सकता है और उत्पादों का उत्पादन नहीं कर सकता है। वहीं बिना श्रमशक्ति के उपभोग के उत्पादन के साधनों को उत्पादों में तब्दील नहीं किया जा सकता है। जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया, पूँजीपति पहले उत्पादन के साधनों को ख़रीदता है क्योंकि वह श्रमशक्ति को ख़रीदने के बाद एक पल के लिए भी निष्क्रिय नहीं रखना चाहता है। *नतीजतन, पूँजीपति बाज़ार में उत्पादन के साधनों से वंचित किये जा चुके मज़दूर के समक्ष उत्पादन के साधनों के स्वामी के रूप में प्रकट होता है।* यानी, प्रत्यक्ष उत्पादक के समक्ष उत्पादन के साधन शुरुआत से ही किसी और की पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के रूप में प्रकट होते हैं और प्रत्यक्ष उत्पादक यानी मज़दूर अपनी श्रमशक्ति ढाँचागत तौर पर पूँजीपति को उजरत के बदले बेचने को बाध्य होता है। *यानी, एक विशिष्ट वर्गीय सम्बन्ध पूँजीपति और मज़दूर के बीच होने वाले विनिमय की ज़मीन तैयार करते हैं।* दिखने में यह एक ख़रीदार और एक विक्रेता के बीच का साधारण सम्बन्ध दिखायी देता है। लेकिन वास्तव में इस विनिमय के सम्बन्ध के पीछे उत्पादन के साधनों का इजारेदार मालिकाना रखने वाले पूँजीपति वर्ग और उत्पादन के साधनों से वंचित किये जा चुके प्रत्यक्ष उत्पादकों के वर्ग यानी मज़दूर वर्ग के बीच का वर्गीय सम्बन्ध होता है। इसके बिना, पूँजीवादी उत्पादन की बुनियाद में मौजूद यह विनिमय की यह कार्रवाई हो ही नहीं सकती है, यानी श्रमशक्ति की पूँजीपति द्वारा मज़दूरी के बदले ख़रीद की कार्रवाई। मार्क्स लिखते हैं:

> "दूसरे शब्दों में, ये उत्पादन के साधन श्रमशक्ति के स्वामी के समक्ष किसी और की सम्पत्ति के रूप में प्रकट होते हैं। इसके विपरीत, ख़रीदार के सामने श्रम का विक्रेता किसी और की श्रमशक्ति के रूप में प्रकट होता है जिसे उसकी पूँजी के वास्तव में उत्पादक पूँजी के रूप में काम करने योग्य होने के लिए उसके नियन्त्रण में जाना होगा और उसकी पूँजी में समाविष्ट होना होगा। इस प्रकार जिस क्षण पूँजीपति और उजरती मज़दूर M – L (मज़दूर के लिए L – M) की कार्रवाई में एक-दूसरे के समक्ष आते हैं, उस क्षण ही उनके बीच का वर्ग सम्बन्ध पहले से ही मौजूद होता है, पहले से ही पूर्वकल्पित होता है। यह क्रय व विक्रय होता है, यानी मुद्रा-सम्बन्ध

(पेज 18 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 17 से आगे)

होता है, लेकिन एक ऐसा क्रय और विक्रय होता है जिसमें यह पहले से ही पूर्वकल्पित होता है कि ख़रीदार पूँजीपति है और विक्रेता उजरती मज़दूर है; और यह सम्बन्ध वास्तव में इसीलिए अस्तित्वमान होता है क्योंकि श्रमशक्ति के वास्तवीकरण की स्थितियाँ, यानी जीविका और उत्पादन के साधन किसी और की सम्पत्ति के रूप में श्रमशक्ति के स्वामी से अलग कर दिये गये होते हैं...

"...पूँजी सम्बन्ध केवल उत्पादन प्रक्रिया में ही पैदा होता है क्योंकि यह संचरण की प्रक्रिया में केवल अन्तर्निहित तौर पर मौजूद होता है, यानी उन बुनियादी तौर पर भिन्न आर्थिक स्थितियों में जिनमें ख़रीदार और विक्रेता एक-दूसरे के सामने आते हैं, यानी उनके वर्ग सम्बन्धों में। *यह मुद्रा की प्रकृति नहीं है जो इस सम्बन्ध को जन्म देती है; उल्टा यह इस सम्बन्ध की मौजूदगी होती है जो कि मुद्रा के मामूली से प्रकार्य को पूँजी के प्रकार्य में तब्दील कर देती है।*" (*वही*, पृ. 115, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यहाँ सबसे ज़्यादा ध्यान रखने वाली बात यह है कि हम मुद्रा-पूँजी के उन विशिष्ट कार्यों को मुद्रा की विशिष्टता न समझ बैठें जो वह केवल इसीलिए कर पाती है क्योंकि उसका इस्तेमाल पूँजी के रूप में किया जाता है, यानी उत्पादन की वस्तुगत और वैयक्तिक स्थितियों को ख़रीदने के लिए किया जाता है। यह काम मुद्रा सिर्फ़ इसलिए ही कर पाती है कि उजरती मज़दूरों का एक पूरा वर्ग पूँजीपति वर्ग के रहमो-करम पर पहले से मौजूद है। *मुद्रा का अस्तित्व मात्र ही उसे पूँजी में तब्दील नहीं कर सकता अगर ऐसा वर्ग ही मौजूद न हो।* इसलिए मुद्रा के पूँजी में तब्दील होने की पूर्वशर्त मज़दूर और पूँजीपति के रूप में उत्पादन के साधनों से वंचित प्रत्यक्ष उत्पादकों के वर्ग और उत्पादन के साधनों पर इजारेदार मालिकाना रखने वाले मालिक वर्ग की मौजूदगी, यानी एक निश्चित वर्ग सम्बन्ध की मौजूदगी है।

दूसरी बात यह कि कई लोग मुद्रा-पूँजी के उन विशिष्ट प्रकार्यों को जो कि वह मुद्रा के रूप में ही कर सकती है (यानी मालों के साथ विनिमय, या, इस मामले में श्रमशक्ति व उत्पादन के साधनों की ख़रीद-फ़रोख़्त) पूँजी की विशिष्टता मान लेते हैं, जबकि यह विशिष्ट प्रकार्य पूँजी केवल मुद्रा के रूप में मौजूद होने पर ही कर सकती है। यानी, मुद्रा और पूँजी को लेकर मार्क्स से पहले का राजनीतिक अर्थशास्त्र तमाम प्रकार के भ्रमों का शिकार रहा था। *मार्क्स स्पष्ट करते हैं कि मुद्रा का पूँजी में तब्दील होना एक वर्ग सम्बन्ध के आधार पर ही सम्भव है और दूसरी बात यह कि ऐसा होने पर भी मुद्रा के रूप में पूँजी वे ही प्रकार्य सम्पन्न कर सकती है, जिसकी इजाज़त मुद्रा के विभिन्न प्रकार्य देते हैं।*

मुद्रा-पूँजी के परिपथ के इस पहले चरण को विस्तृत तौर पर समझना हमारे लिए अपरिहार्य है। मार्क्स की *पूँजी* राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक राजनीतिक रचना है, जिसे सर्वहारा वर्ग की अवस्थिति से लिखा गया है। उसे केवल अकादमिक तौर पर समझना असम्भव है। मार्क्स मूल्य, मुद्रा, पूँजी से लेकर पूँजीवादी उत्पादन के तमाम पहलुओं के विश्लेषण में वर्ग सम्बन्धों को केन्द्र में रखते हैं। वास्तव में, इसके बिना हम पूँजीवादी उत्पादन को सम्पूर्णता में समझ ही नहीं सकते हैं। मुद्रा-पूँजी के परिपथ की पहली कार्रवाई यानी M – C में ही हम मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के अन्तरविरोध को स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं। दिखने में यह श्रम बाज़ार में एक ख़रीदार और विक्रेता के बीच का स्वतन्त्र सम्बन्ध नज़र आ सकता है। लेकिन जैसे ही हम विश्लेषण के नश्तर से इस प्रतीतिगत यथार्थ की सतह को चीरते हैं और यह प्रश्न उठाते हैं कि मज़दूर आख़िर अपनी श्रमशक्ति पूँजीपति को बेचने को क्यों बाध्य होता है, पूँजीपति को बाज़ार में बिकने के लिए उपलब्ध श्रमशक्ति का भण्डार क्यों तैयार मिलता है, क्यों यह श्रमशक्ति की ख़रीद ही है जो पूँजी के हाथ में मौजूद मुद्रा की एक निश्चित राशि को पूँजी की निश्चित राशि में तब्दील कर देती है, वैसे ही हम यह देखने में सक्षम हो जाते हैं कि इस मासूम से दिखने वाले मुद्रा-सम्बन्ध के पीछे वास्तव में उत्पादन के साधनों से प्रत्यक्ष उत्पादकों के वर्ग को जबरन वंचित किये जाने की समूची प्रक्रिया खड़ी होती है। सामाजिक तौर पर, इसके बिना पूँजीवादी उत्पादन की पहली कार्रवाई भी सम्भव नहीं होती; इसके बिना पूँजीवादी माल उत्पादन समाज में सामान्यीकृत उत्पादन पद्धति नहीं बन सकता; इसके बिना, वह मज़दूर और पूँजीपति के बीच के पूँजी-सम्बन्ध व मज़दूरी-सम्बन्ध को सतत् पुनरुत्पादित नहीं करता रह सकता।

साथ ही, मार्क्स बताते हैं कि प्राक्-पूँजीवादी संरचनाओं के भीतर ही व्यापार व वाणिज्य के पर्याप्त विकास के बिना भी पूँजीवादी उत्पादन पद्धति प्रभुत्वशाली उत्पादन पद्धति नहीं बन सकती। यानी मालों के उत्पादन व उनके विनिमय तथा माल बाज़ार के पर्याप्त विकास के बिना भी पूँजीवादी उत्पादन पद्धति प्रभुत्वशाली उत्पादन पद्धति नहीं बन सकती है, यानी माल उत्पादन का सामान्यीकरण नहीं हो सकता है। इस प्रकार माल बाज़ार का विचारणीय सीमा तक विकास और साथ ही श्रमशक्ति के माल में तब्दील होन के साथ श्रम बाज़ार के समाज के पैमाने पर विस्तार के साथ ही पूँजी-सम्बन्ध व मज़दूरी-सम्बन्ध के सामान्यीकरण की ज़मीन तैयार होती है।

मार्क्स सामन्ती भूस्वामियों से पूँजीवादी भूस्वामियों में तब्दील हो रहे रूसी भूस्वामियों के उदाहरण से इस बात को समझाते हैं। वह बताते हैं कि संक्रमण से गुज़र रहे इन भूस्वामियों की दो शिक़ायतें थीं: पहला, उनके हाथ में पर्याप्त नकदी मौजूद नहीं होती थी। यह सच है कि मालों के उत्पादन व उनके बिकने के बाद उनके हाथों में नकदी की एक विचारणीय मात्रा आती थी। लेकिन ये चीज़ें हो सकें, उसके पहले ही मज़दूरों को मज़दूरी देने के लिए उनके हाथों में पर्याप्त नकदी होनी चाहिए। ज़ाहिर है, मार्क्स बताते हैं, कि उद्यमी पूँजीपति के प्रवेश के साथ यह समस्या हल हो जायेगी, जिसके हाथों में न केवल अपनी पूँजी होगी, बल्कि उसके पास दूसरों की पूँजी का उपयोग करने का भी अधिकार होगा। यह व्यापार और बाज़ारों के माल उत्पादन के साथ हो रहे विकास और आदिम संचय की प्रक्रिया के साथ ही सम्भव होता है।

इन रूसी भूस्वामियों की दूसरी शिक़ायत यह थी कि जब उनके पास पर्याप्त मुद्रा-पूँजी मौजूद होती थी, तो भी बाज़ार में पर्याप्त मात्रा में उजरती श्रमिकों की उपलब्धता नहीं होती थी। मार्क्स बताते हैं कि इसका कारण यह था कि रूस में भूमि के सामुदायिक मालिकाने की व्यवस्था की मौजूदगी थी, जिसके कारण प्रत्यक्ष उत्पादकों का वर्ग जीविका व उत्पादन के साधनों से पूर्ण रूप से वंचित नहीं था इस व्यवस्था के विघटन के साथ रूस में भी उजरती श्रमिकों का एक विशालकाय वर्ग सामाजिक तौर पर पैदा हो जायेगा। यह रूस में मार्क्स की मृत्यु के बाद के दौर में ही हुआ, जब स्तोलिपिन सुधारों व अन्य प्रशासनिक क़दमों के ज़रिये ग्राम समुदाय 'मीर' की व्यवस्था के भंग होने की शुरुआत हुई। निश्चित तौर पर, यह प्रक्रिया आर्थिक शक्तियों के कारण पहले से ही जारी थी, लेकिन शासक वर्ग के उक्त क़दमों के ज़रिये यह एक मुकम्मिल मुक़ाम तक पहुँची।

पहले चरण M – C को समझने का मर्म यह है कि श्रमशक्ति एक माल में तब्दील हो चुकी होती है, उत्पादन के साधन पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो चुके होते हैं और यही वजह है कि माल संचरण की एक आम गतिविधि यहाँ पूँजी के संचरण के रूप में प्रकट होती है क्योंकि मुद्रा का इस्तेमाल इस पहले चरण में ही पूँजी के रूप में हो रहा है, यानी मुद्रा की एक ऐसी मात्रा के रूप में जिसका विनिमय उत्पादन के साधनों और, उससे भी महत्वपूर्ण, श्रमशक्ति नामक विशेष माल से हो रहा है। यही चीज़ वास्तव में मुद्रा को पूँजी में तब्दील करती है : उत्पादक पूँजी के तत्वों की मुद्रा के द्वारा ख़रीद और दूसरे चरण में उनका उत्पादक उपभोग जिसका परिणाम होता है इन तत्वों के मूल्य से ज़्यादा मूल्य के माल का उत्पादन। M – C के इस पहले चरण के बाद आता है मुद्रा-पूँजी के परिपथ का दूसरा चरण, यानी उत्पादक पूँजी का चरण जहाँ उत्पादन पूँजी के संचरण की दो कार्रवाइयों, M – C और C' – M' के बीच एक विघ्न या बाधा या रुकावट के रूप में प्रकट होता है, लेकिन एक ऐसी रुकावट जिसके बिना पूँजीवादी उत्पादन का मूल लक्ष्य ही पूरा नहीं हो सकता, यानी, मूल्य-संवर्धन या बेशी मूल्य का उत्पादन।

मुद्रा-पूँजी के परिपथ के पहले चरण की इन विशिष्टताओं और उसकी अहमियत को समझने के बाद हम दूसरे चरण पर विचार कर सकते हैं।

(अगले अंक में जारी)

मज़दूर वर्ग के सच्चे लेखक मक्सिम गोर्की के जन्मदिवस (28 मार्च) के अवसर पर

"कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के लिए इन्सानों को कुचलने के जितने साधन हैं, हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ेंगे!"

''हम क्रान्तिकारी हैं और उस समय तक क्रान्तिकारी रहेंगे जब तक इस दुनिया में यह हालत रहेगी कि कुछ लोग सिर्फ हुक़्म देते हैं और कुछ लोग सिर्फ़ काम करते हैं। हम उस समाज के ख़िलाफ हैं जिनके हितों की रक्षा करने की आप जज लोगों को आज्ञा दी गयी है। हम उसके कट्टर दुश्मन हैं और आपके भी और जब तक इस लड़ाई में हमारी जीत न हो जाय, हमारी और आपकी कोई सुलह मुमकिन नहीं है। और हम मज़दूरों की जीत यकीनी है! आपके मालिक उतने ताकतवर नहीं हैं जितना कि वे अपने आपको समझते हैं। यही सम्पत्ति जिसे बटोरने और जिसकी रक्षा करने के लिए वे अपने एक इशारे पर लाखों लोगों की जान कुर्बान कर देते हैं, वही शक्ति जिसकी बदौलत वे हमारे ऊपर शासन करते हैं, उनके बीच आपसी झगड़ों का कारण बन जाती है और उन्हें शारीरिक तथा नैतिक रूप से नष्ट कर देती हैं। सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए उन्हें बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ती है। असल बात तो यह है कि आप सब लोग, जो हमारे मालिक बनते हैं हमसे ज़्यादा गुलाम हैं। हमारा तो सिर्फ़ शरीर गुलाम है, लेकिन आपकी आत्मायें गुलाम हैं । आपके कन्धे पर आपकी आदतों और पूर्व–धारणाओं का जो जुआ रखा है उसे आप उतारकर फेंक नहीं सकते। लेकिन हमारी आत्मा पर कोई बन्धन नहीं है। आप हमें जो जहर पिलाते रहते हैं वह उन जहरमार दवाओं से कहीं कमज़ोर होता है जो आप हमारे दिमागों में अपनी मर्जी के ख़िलाफ उँड़ेलते रहते हैं। हमारी चेतना दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है और सबसे

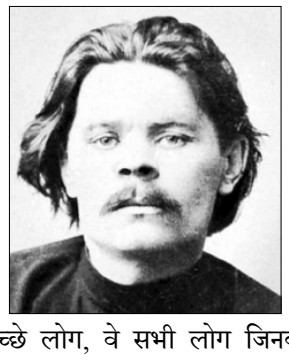

अच्छे लोग, वे सभी लोग जिनकी आत्माएँ शुद्ध हैं हमारी और खिंचकर आ रहे हैं, इनमें आपके वर्ग के लोग भी हैं। आप ही देखिये-आपके पास कोई ऐसा आदमी नहीं है जो आपके वर्ग के सिद्धान्तों की रक्षा कर सके; आपके वे सब तर्क खोखले हो चुके हैं जो आपको इतिहास के न्याय के घातक प्रहार से बचा सकें, आपमें नये विचारों को जन्म देने की क्षमता नहीं रह गयी है, आपकी आत्माएँ निर्जन हो चुकी हैं। हमारे विचार बढ़ रहे हैं, अधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं, वे जन–साधारण में प्रेरणा फूँक रहे हैं और उन्हें स्वतन्त्रता के संग्राम के लिए संगठित कर रहे हैं। यह जानकर कि मज़दूर वर्ग की भूमिका कितनी महान है, सारी दुनिया के मज़दूर एक महान शक्ति के रूप में संगठित हो रहे हैं- नया जीवन लाने की जो प्रक्रिया चल रही है उसके मुकाबले में आपके पास क्रूरता और बेहयाई के अलावा और कुछ नहीं है। परन्तु आपकी बेहयाई भोंडी है और आपकी क्रूरता से हमारा क्रोध और बढ़ता है। जो हाथ आज हमारा गला घोंटने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं वही कल साथियों की तरह हमारे हाथ थाम लेने को आगे बढ़ेंगे। आपकी शक्ति धन बढ़ाते रहने की मशीनी शक्ति है, उसने आपको ऐसे दलों में बाँट दिया है जो एक–दूसरे को खा जाना चाहते हैं। हमारी शक्ति सारी मेहनतक़श जनता की एकता की निरन्तर बढ़ती हुई चेतना की जीवन–शक्ति में है। आप लोग जो कुछ करते हैं वह पापियों का काम है, क्योंकि वह लोगों को गुलाम बना देता है। आप लोगों के मिथ्या प्रचार और लोभ ने पिशाचों और राक्षसों की अलग एक दुनिया बना दी है जिसका काम लोगों को डराना–धमकाना है। हमारा काम जनता को इन पिशाचों से मुक्त कराना है। आप लोगों ने मनुष्य को जीवन से अलग करके नष्ट कर दिया है; समाजवाद आपके हाथों टुकड़े–टुकड़े की गयी दुनिया को जोड़कर एक महान रूप देता है और यह होकर रहेगा।''

('माँ' उपन्यास में मज़दूर नायक पावेल का अदालत में बयान)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(दसवीं किश्त)

● सनी

उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के कम्युनिस्ट आन्दोलन की विरासत रूस के कम्युनिस्ट आन्दोलन को मिली। रूसी कम्युनिस्ट आन्दोलन ने यूरोप के कम्युनिस्ट आन्दोलन से निश्चित ही सीखा लेकिन इसके बावजूद रूस के आन्तरिक वर्ग संघर्ष की गतिकी ही इसका प्रधान पहलू थी, या यह कहना अधिक उचित होगा कि रूसी कम्युनिस्ट आन्दोलन रूसी समाज के आन्तरिक वर्ग संघर्ष की गतिकी का उत्पाद था। रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन यूरोप से उन्नत रूप में विकसित हुआ और मज़दूर वर्ग की पार्टी की एक सम्पूर्ण और वैज्ञानिक अवधारणा भी सही मायने में यहीं पैदा हुई।

साम्राज्यवाद की मंज़िल में प्रवेश करने के बाद से साम्राज्यवादी लूट के एक हिस्से की बदौलत पश्चिमी यूरोप के देशों के शासक वर्गों ने अपने देश में वर्ग संघर्ष की आँच को कम करने में एक हद तक कामयाबी पायी थी। क्रान्तियों का केन्द्र पूर्व की ओर यानी औपनिवेशिक देशों की ओर स्थानान्तरित हो रहा था। अर्द्धसामन्ती सम्बन्धों और पिछड़े पूँजीवादी सम्बन्धों वाला और पिछली क़तार में खड़ा साम्राज्यवादी देश रूस पूर्व और पश्चिम का सेतु था। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में उसकी जगह और उसके आन्तरिक राजनीतिक वर्ग संघर्ष के सन्धिबिन्दु के कारण वह भी क्रान्ति का एक हॉटस्पॉट बन रहा था। रूस में 1861 से भूदास प्रथा ख़त्म होने के बाद से वर्ग सम्बन्धों में बदलाव आये। पहले रूस में वर्ग सम्बन्धों के ताने-बाने में आ रहे परिवर्तनों की चर्चा करना बेहतर होगा ताकि क्रान्तिकारी आन्दोलन के उभार को और कम्युनिस्ट पार्टी के जन्म और पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा के उद्भव को समझा जा सके।

1861 में भूदास प्रथा के उन्मूलन के बाद भी गाँव के ग़रीबों की जीवनस्थिति में कोई गुणात्मक अन्तर न आया। लेनिन स्पष्ट करते हैं कि रूस में प्रशियन पथ से यानी मन्थर गति से कृषि में पूँजीवादी विकास हुआ। निरंकुश ज़ारशाही ने सामन्ती भूस्वामियों को पूँजीवादी भूस्वामियों में तब्दील होने का रास्ता दिया। गाँव में पूँजी का प्रवेश हो रहा था और किसानों की आबादी का वर्ग विभेदीकरण हो रहा था। सर्वहाराकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। **धीमी गति से होने वाले इन परिवर्तनों के चलते एक लम्बे काल में गाँव में एक विशाल ग्रामीण मज़दूर वर्ग, ग़रीब व मँझोले किसानों का वर्ग और एक बेहद छोटा ग्रामीण पूँजीपति वर्ग जन्मा।** गाँव के ग़रीबों की ज़िन्दगी अभी भी बदहाल थी। सबसे भयंकर हाल भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब किसानों का था। इसके चलते ही ग्रामीण ग़रीब आबादी का एक हिस्सा शहरों की ओर प्रवास कर रहा था। 'बोल्शेविक पार्टी का इतिहास' पुस्तक में गाँव के ग़रीबों की जीवन स्थिति का चित्रण इस तस्वीर को साफ़ कर देता है:

"जब भूदास प्रथा का खात्मा हो गया, तब किसानों को मजबूर किया गया कि बहुत ही कड़ी शर्तों पर वे ज़मीन्दारों से लगान पर ज़मीनें लें। नकदी लगान देने के अलावा, किसानों को अकसर ज़मीन्दार मजबूर करते थे कि अपने ही घोड़ों और हल-माची से उनकी जमीन का एक निश्चित हिस्सा ये बिना पैसे लिये जोतें-बोएँ। इसे अत्राबोत्की या वार्शचीना (लगान के बदले मेहनत, बेगार) कहते थे। ज़्यादातर किसानों को मजबूर होना पड़ता था कि वे ज़मीन्दारों को गल्ले की शकल में लगान दें, जो उनकी फसल का आधा होता था। इसे इस्पोलू (अधियारी) कहते थे। इस तरह, हालत क़रीब-क़रीब वैसी ही रही जैसी कि भूदास प्रथा में थी। फ़र्क यही या कि किसान निजी तौर पर अब आज़ाद था और जानवर की तरह उसकी ख़रीद-फ़रोख्त नहीं हो सकती थी।

"ज़मीन्दारों ने पिछड़े हुए किसान कुनबों को शोषण के विभिन्न तरीकों (लगान, जुर्माना) से बेदम कर दिया था। ज़मीन्दारों के सताने की वजह से, ज्यादातर किसान अपनी खेती में तरक्की नहीं कर सकते थे। इसीलिए, क्रान्ति से पहले के रूस में खेती बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई थी, जिससे अकसर फसल नहीं होती थी और अकाल पड़ते थे।

"भूदास प्रथा के अवशेषों से, भारी टैक्स और ज़मीन्दारों को मुक्ति धन देने से, जो कभी-कभी किसान कुनबे की आय से भी ज्यादा होता था, किसान तबाह हो गये। वे दर-दर के भिखारी बन गये और रोज़ी की तलाश में उन्हें मजबूरन अपने गाँव छोड़ने पड़े। वे मिलों और कारख़ानों में काम करने चले गये। कारख़ानेदारों को इससे सस्ते में श्रमशक्ति ख़रीदने का ज़रिया मिल गया।"

(सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास)

गाँवों में किसानों की इस जीवन स्थिति से प्रभावित होकर कुछ नौजवान और बुद्धिजीवी किसानों को संगठित करने के मक़सद से गाँव की ओर रुख़ कर रहे थे। यह नरोदवादी धारा के नौजवान थे और यही रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन के जन्म का बिन्दु था। नरोदवाद का मक़सद ज़ारशाही को उखाड़कर आदर्श समाज कायम करना था। उनका मानना था कि गाँव के किसान ही क्रान्तिकारी वर्ग हैं और ग्रामीण मीर व्यवस्था ही भविष्य के समाज का मॉडल है। इस क्रम में उन्होंने ग्रामीण जनता के बीच प्रचार किया परन्तु यह सफल नहीं हुआ। किसान नरोदवादियों के शेखचिल्लीवादी सपनों से सहमत न थे और ग्रामीण जनता का समर्थन नरोदवादियों का न मिला। इसके चलते नरोदवादियों ने जनदिशा की जगह वैयक्तिक आतंकवाद की राह अपना ली और ज़ारशाही के अधिकारियों, राजा और राजकुमारों को निशाना बनाना शुरू किया। इस धारा का सबसे प्रमुख संगठन नरोद्नाया वोल्या 1879 में बना था। यह एक गुप्त संगठन था। नरोद्नाया वोल्या ने राजनीतिक संघर्ष का रास्ता चुना और अपने लक्ष्य में निरंकुश शासन को उखाड़ कर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल करना रखा। इसका कार्यक्रम सर्व मताधिकार पर आधारित 'स्थायी लोकप्रिय सभा' को संगठित करना, जनवादी कार्यक्रम और ज़मीन का पुनर्वितरण और फैक्ट्री मज़दूरों को स्थानान्तरित करना था। लेनिन ने नरोद्नाया वोल्या के बारे में कहा था कि उन्होंने "राजनीतिक संघर्ष में संक्रमण करके एक क़दम आगे बढाया था लेकिन वे समाजवाद तक नहीं पहुँच सके।" वैयक्तिक आतंक का यह रास्ता ज़ारशाही को परास्त करने में असफल रहा। हालाँकि लेनिन ने नरोद्नाया वोल्या के सदस्यों की बहादुरी, उनकी गुप्तता और केन्द्रीकृत सांगठनिक ढाँचे की तारीफ़ की। जब नरोदवादी धारा गाँव में ही कल्पित भविष्य का मॉडल खड़ा करने की चेष्टा कर रही थी उस समय ही रूस में आधुनिक सर्वहारा वर्ग शहरों में संख्या में बढ़ रहा था।

1880 से रूस में औद्योगीकरण ने तेज़ गति पकड़ ली। यह औद्योगिक विकास मुख्यतः रूसी राज्यसत्ता, बैंकों और विदेशी पूँजी के ज़रिये हो रहा था। रूस में भी दस्तकारी से मैन्युफैक्चर होते हुए फैक्ट्री व्यवस्था तक औद्योगीकरण का विकास भी जारी था लेकिन बड़े उद्योग में निवेश मुख्यतः राज्यसत्ता और विदेशी पूँजी के चलते हुआ। 1880 में रेल की पटरियों का जाल पूरे रूस में फैल गया। टेक्सटाइल, स्टील और तमाम उद्योग भी मास्को, कीव, ओडेसा और सेंट पीटर्सबर्ग में उद्योग केन्द्रित हुए। ज़ारशाही रूस में मज़दूरों की जीवनस्थिति की चर्चा करते हुए 'बोल्शेविक पार्टी के इतिहास' पुस्तक में लिखा है कि :

"ज़ारशाही रूस में मज़दूरों की ज़िन्दगी बड़ी ही कठिन थी। 1880 के क़रीब, मिलों और कारख़ानों में काम करने का दिन साढ़े बारह घण्टे से कम का नहीं था और सूती धन्धों में 14 से 15 घण्टे तक का हो जाता था। औरतों और बच्चों की मेहनत का शोषण बड़े पैमाने पर होता था। बच्चे उतने ही घण्टे काम करते थे जितने घण्टे बड़े, लेकिन औरतों की तरह तनख्वाह बहुत कम पाते थे। मज़दूरी बेहद कम दी जाती थी। ज्यादातर मज़दूरों को 7 या 8 रूबल माहवार दिया जाता था। धातु के कारख़ानों और ढलाई घरों के मज़दूरों को, जो सबसे ज्यादा तनख्वाह पाते थे, 35 रूबल माहवार से ज्यादा मज़दूरी नहीं मिलती थी। मज़दूरों की रक्षा करने के लिए कोई भी क़ायदे-क़ानून नहीं थे। नतीजा यह होता था कि मज़दूर भारी तादाद में घायल होते और मारे जाते थे। मज़दूरों का बीमा नहीं होता था और हर तरह की दवा-दारू के लिए उन्हें पैसे देने होते थे। इनके रहने के घरों की हालत भयानक थी। कारख़ाने की बैरकों में छोटी-छोटी 'खोलियों' में दस-दस, बारह-बारह मज़दूर ठूँस दिये जाते थे। मज़दूरी देने के मामले में कारख़ानेदार अकसर मज़दूरों को ठगते थे। कारख़ाने की दुकानों में भारी क़ीमतें देकर चीज़ें खरीदने के लिए मज़दूरों को मजबूर किया जाता था और जुर्माने के जरिये उनकी जेबें कतरी जाती थीं।"

(सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास)

मज़दूरों ने इस परिस्थिति के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया और खुद को संगठित करने का प्रयास किया। इस क्रम में ही 1875 में ओडेसा में दक्षिण रूसी मज़दूर यूनियन का गठन हुआ। यह रूस का पहला क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन था। इसे केवल 8-9 महीनों में ही ज़ारशाही ने कुचल दिया। इसके बाद प्लेखानोव के सहयोग से खाल्तुरिन और ओब्रोंस्की के नेतृत्व में उत्तरी रूसी मज़दूर यूनियन का गठन हुआ। यह पहला मज़दूर वर्गीय संगठन था जिसने ज़िनोवियेव के शब्दों में मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का विचार पेश किया। इस संगठन ने सेण्ट पीटर्सबर्ग में मज़दूरों की हड़तालों का भी नेतृत्व किया। 1879 में इस संगठन का भी ज़ारशाही ने दमन कर दिया। इस संगठन से जुड़े लोगों ने 1880 'रोबोचाया ज़ार्या' नाम का पहला मज़दूर अखबार भी निकाला।

नरोदवादी संगठन 'जेम्ल्या ई वोल्या' में दो फाड़ होने पर एक तरफ़ नरोद्नाया वोल्या बना था और दूसरी तरफ़ चोर्नी पेरदेल नामक संगठन बना था। इस संगठन से प्लेखानोव जुड़े थे। 1870 में प्लेखानोव इस संगठन से अलग हो गए। आगे चलकर वे मार्क्सवादी बन गए। उन्होंने वेरा ज़ासुलिच और एक्सेलरोद के साथ 'श्रम मुक्ति दल' 1883 में बनाया। यह संगठन पहला वह संगठन था जिसने रूस में मार्क्सवाद का प्रचार करना शुरू किया। **प्लेखानोव द्वारा इस संगठन के निर्माण के साथ नरोदवादी धारा के साथ मार्क्सवाद का निर्णायक संघर्ष शुरू हुआ।**

नरोदवाद की धारा की निर्णायक विचारधारात्मक शिकस्त लेनिन से चली बहसों में हुई। लेनिन के अनुसार 'श्रमिक मुक्ति दल' ने "सामाजिक जनवादी आन्दोलन की सिर्फ़ सैद्धान्तिक नींव डाली और मज़दूर आन्दोलन की तरफ पहले क़दम उठाये।" हम अगली कड़ी में लेनिन के नेतृत्व में 'मज़दूर वर्ग के मुक्ति संग्राम की सेंट पीटर्सबर्ग लीग' बनने और नरोदवाद से संघर्ष पर चर्चा करेंगे। 'मज़दूर वर्ग के मुक्ति संग्राम की सेण्ट पीटर्सबर्ग लीग' ही वह पहला संगठन था जिसने रूस में मज़दूर आन्दोलन को समाजवाद की धारा से जोड़ने का काम किया और रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के गठन की ओर शुरुआती क़दम उठाया। आगे हम मार्क्स एंगेल्स के रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के गठन में योगदान पर भी रोशनी डालेंगे।

(अगले अंक में जारी)

1917 की क्रान्ति से पहले रूस में मज़दूरों की एक मीटिंग का दृश्य

अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की प्रमुख नेता और महान क्रान्तिकारी रोज़ा लक्ज़मबर्ग के जन्मदिवस (5 मार्च) पर

रोज़ा लक्ज़मबर्ग की याद में

● अमित

"आज बर्लिन में पूँजीपति और सामाजिक जनवादी जश्न मना रहे हैं। वे कार्ल लीब्कनेख्त व रोज़ा लक्ज़मबर्ग को क़त्ल करने में सफल हो गये हैं। ईबर्ट और शिडेमान, जिन्होंने सालों-साल मज़दूरों का शिकार करने के लिए उन्हें कसाईखाने पहुँचाया, ने अब सर्वहारा नेताओं के क़ातिलों की भूमिका अपना ली है। जर्मनी का उदाहरण दिखाता है कि लोकतन्त्र केवल पूँजीवादी लूट और बर्बर हिंसा का चक्रव्यूह है। कसाइयों का नाश हो।" - लेनिन (रोज़ा लक्ज़मबर्ग की शहादत पर)

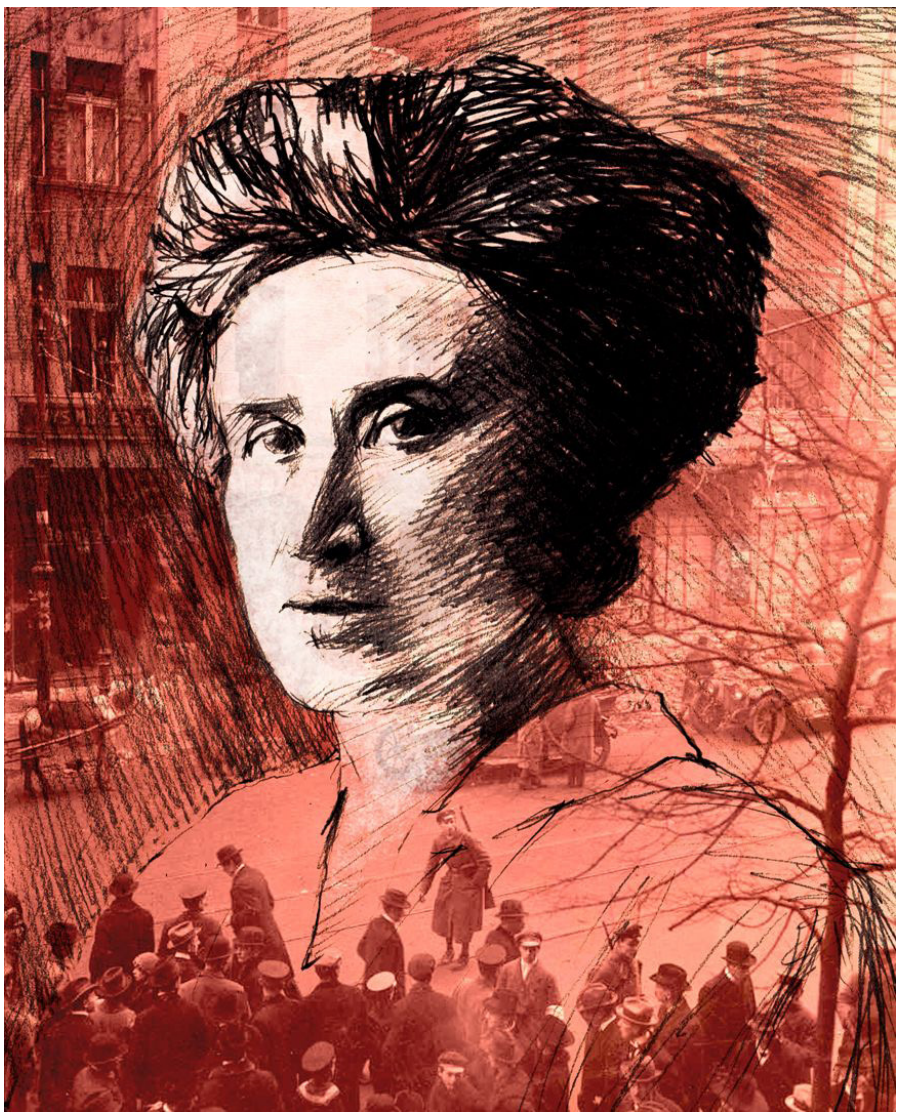

रोज़ा लक्ज़मबर्ग का जन्म 5 मार्च 1871 को पोलैण्ड के ज़मोस्क शहर में हुआ था। मात्र 16 वर्ष की आयु में ही क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय हो जाने वाली रोज़ा लक्ज़मबर्ग को 1889 में देश छोड़कर स्विटजरलैण्ड जाना पड़ गया। 1893 में उन्होंने एसडीकेपी (सोशल डेमोक्रेसी ऑफ़ किंगडम ऑफ़ पोलैण्ड) नाम से एक पार्टी का गठन किया। मात्र 22 वर्ष की आयु में उन्हें पोलैण्ड की पार्टी द्वारा द्वितीय इण्टरनेशनल के लिए चुना गया था। 1898 में रोज़ा जर्मनी चली आयीं और जर्मनी में कम्युनिस्ट में सक्रिय होने के साथ ही उन्होंने बर्नस्टीन के संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष शुरु कर दिया। 1900 में प्रकाशित अपनी पुस्तिका 'सुधार या क्रान्ति' के ज़रिये रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने बर्नस्टीन के संशोधनवाद पर ज़बरदस्त चोट की। उन्होंने लिखा – "क्रान्ति के हथौड़े की चोट से, यानी सर्वहारा द्वारा राजनीतिक सत्ता पर विजय पाने से ही (पूँजीवादी समाज और समाजवादी समाज के बीच की) दीवार टूट सकती है।"

1905 की रुसी क्रान्ति में भाग लेने के लिए वह वारसा गयीं। मार्च 1906 में उन्हें ज़ार के शासन द्वारा गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में उन्हें स्वास्थ्यगत कारणों से जमानत दी गयी जिसका लाभ उठाकर वह पुनः जर्मनी चली गयीं। 1905 की रूसी क्रान्ति के अनुभवों ने बोल्शेविकों की कार्यप्रणाली में उनके विश्वास को और अधिक बढ़ा दिया।

1907 के द्वितीय इण्टरनेशनल के सम्मेलन में लेनिन के साथ मिलकर उन्होंने साम्राज्यवाद और युद्ध के विरुद्ध प्रस्ताव तैयार किया। लेनिन ने इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए रोज़ा को ही आगे किया। रोज़ा लक्ज़मबर्ग और उनके साथियों ने प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत से पहले ही युद्ध की आहट को भाँप लिया था और इसके ख़िलाफ़ मोर्चेबन्दी में जुट गयी थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के दौर में जब जर्मनी और यूरोप की ज़्यादातर सामाजिक जनवादी पार्टियाँ और कार्ल काउत्सकी जैसे नेता तक युद्धोन्माद और अन्धराष्ट्रवादी उन्माद में बह रहे थे, रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने इसके ख़िलाफ़ डटकर लोहा लिया।

कार्ल लीब्कनेख्त आदि नेताओं के साथ मिलकर रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने स्पार्टकस लीग बनायी। आगे चलकर दिसम्बर 1918 में रोज़ा लक्ज़मबर्ग, कार्ल लीब्कनेख़्त, मेहरिंग, क्लारा ज़ेटकिन आदि के नेतृत्व में जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया गया।

15 जनवरी 1919 को कम्युनिस्ट विद्रोह भड़काने के आरोप में रोज़ा लक्ज़मबर्ग और कार्ल लीब्कनेख़्त को गिरफ़्तार किया गया। कार्ल लीब्कनेख़्त को गोली मार दी गयी। रोज़ा लक्ज़मबर्ग के सिर पर बन्दूक की बट से प्रहार किया गया और उसके बाद उनके सिर में भी गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गयी। इस प्रकार मात्र 48 साल की उम्र में रोज़ा लक्ज़मबर्ग शहीद हो गयीं। अपनी शहादत के कुछ दिनों पहले उन्होंने लिखा था –

"वर्तमान नेतृत्व पूर्णत: असफल हो चुका है। नये नेतृत्व का जन्म जनता के बीच से, जनता द्वारा किया जाना चाहिए, केवल जनता ही निर्णायक शक्ति है। वही वह चट्टान है जिस पर बनी इमारत पर क्रान्ति की शीर्ष विजय पताका फहरायी जायेगी। इतिहास साक्षी है जनता पहले भी उच्चतम स्थान पर थी, आगे भी रहेगी। हाल की उसकी पराजय अनेकानेक ऐतिहासिक पराजयों की एक मामूली सी कड़ी है जो अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के लिए गर्व और गर्माहट पैदा करने वाला है... मूर्ख तानाशाह, तुम्हारी हुकूमत रेत पर बनी इमारत है। वक्त आ चुका है। क्रान्ति कल फिर तुम्हारा दरवाजा खटखटायेगी और तुम्हारे दरवाजे पर खड़े होकर आतंक को फिर से ललकारेगी - मैं थी, मैं हूँ और मैं हमेशा रहूँगी।"

रोज़ा के जन्मदिवस पर उनको याद करते हुए न केवल उनके शानदार क्रान्तिकारी जीवन और उनकी शहादत से प्रेरणा लेने की ज़रूरत है बल्कि रोज़ा लक्ज़मबर्ग और लेनिन के बीच के मतभेदों का हवाला देकर कम्युनिस्ट विरोधी दुष्प्रचार का भी पर्दाफ़ाश करने की ज़रूरत है। वास्तव में एक बड़ी आबादी इस बात से अपरिचित है कि लेनिन के साथ जिन सवालों पर रोज़ा लक्ज़मबर्ग के मतभेद थे, वह उनकी शहादत के समय तक अधिकांशत: समाप्त हो चुके थे। किसान प्रश्न, राष्ट्रीय प्रश्न और जनवाद के प्रति एक ग़ैर-सर्वहारा नज़रिये पर लेनिन के रोज़ा लक्ज़मबर्ग के साथ मतभेद थे। लेकिन राष्ट्रीय प्रश्न की लेनिनवादी नीति को छोड़कर रोज़ा अपनी शहादत से पहले अन्य दोनों मसलों पर लेनिन से सहमत हो चुकी थीं, जैसा कि क्लारा ज़ेटकिन ने एक अन्य क्रान्तिकारी को रोज़ा द्वारा लिखे गये पत्र का हवाला देते हुए बताया था। ज़्यादातर कम्युनिस्ट आन्दोलन के ग़द्दार लेनिन के द्वारा बुर्जुआ जनवाद की संस्था संविधान सभा को अक्टूबर क्रान्ति के बाद भंग किये जाने के सवाल पर रोज़ा की तात्कालिक आपत्ति का हवाला देते हुए आज भी बुर्जुआ जनवादी विभ्रम फैलाने में लगे रहते हैं। लेकिन ये बेईमान यह नहीं बताते कि रोज़ा स्वयं अपनी इस आपत्ति को छोड़ चुकीं थीं और लेनिन से इस बात पर सहमत हो चुकीं थीं कि मज़दूर जनवाद की संस्थाओं, यानी सोवियतों के अस्तित्व में आने के बाद, बुर्जुआ निर्वाचन मण्डलों के आधार पर चुनी गयी एक बुर्जुआ जनवादी संस्था, यानी संविधान सभा की प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी थी। रोज़ा लक्ज़मबर्ग की साथी रहीं क्लारा जेटकिन ने इस बात को स्पष्ट किया है कि रोज़ा के विचार वास्तव में "जनतन्त्र की अमूर्त अवधारणा" के कारण थे और उनकी मौत तक वह विचार बदल चुके थे। रूसी क्रान्ति की शुरुआत के साथ ही रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने इन शब्दों में रूसी क्रान्ति का स्वागत किया था – "लेनिन की पार्टी एकमात्र ऐसी पार्टी थी जिसने जनादेश तथा एक क्रान्तिकारी पार्टी के कर्तव्यों को बखूबी समझा।" लेकिन आगे चलकर सार्विक मताधिकार, प्रेस की स्वतन्त्रता आदि के सवाल को लेकर उन्होंने बोल्शेविक क्रान्ति की आलोचना की। लेनिन ने यह स्पष्ट किया कि पार्टी, वर्ग, जनवाद और तानाशाही के बारे में रोज़ा लक्ज़मबर्ग के विचारों पर उदार बुर्जुआ जनवाद के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव था। बुर्जुआ मीडिया और त्रॉत्स्कीपन्थी रोज़ा के इस पैम्फलेट में लिखी बात को ले उड़ते हैं जबकि क्लारा जेटकिन ने आगे चलकर यह प्रमाणित किया कि रूसी क्रान्ति पर रोज़ा के विचार बदल चुके थे और वह लेनिन से सहमत हो चुकी थीं।

यह सच है कि रोज़ा लक्ज़मबर्ग का राजनीतिक अर्थशास्त्र अल्पउपभोगवादी विचलन का शिकार था और राष्ट्रीय प्रश्न पर भी वे एक ग़लत अवस्थिति पर खड़ी थीं और बिना शर्त राष्ट्रीय आत्मनिर्णय को सभी राष्ट्रों का अधिकार नहीं मानती थीं।लेकिन इसके बावजूद बावजूद रोज़ा लक्ज़मबर्ग एक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी थीं। उनको याद करते हुए लेनिन ने कहा था – "गरुड़ कभी-कभी मुर्गियों से नीची उड़ान भर सकते हैं। लेकिन मुर्गियाँ कभी भी गरुड़ के बराबर ऊँचाई तक नहीं उठ सकती हैं। ...अपनी ग़लतियों के बावजूद वह हमारे लिए गरुड़ थीं और रहेंगी। न केवल दुनियाभर के कम्युनिस्ट उनकी याद को ज़िन्दा रखेंगे बल्कि उनकी जीवनी और उनका पूरा काम पूरी दुनिया के कम्युनिस्टों की कई पीढ़ियों को प्रशिक्षित करने के लिए महत्वपूर्ण सामग्री का काम करेंगे।"

वह लाल गुलाब लापता है अब तक
कोई नहीं जानता कहाँ होगी वह देह
जब वह ग़रीबों को बता रही थी सच
अमीरों ने खदेड़ा उसे दुनिया से।

– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट
(रोज़ा लक्ज़मबर्ग के लिए समाधि लेख)

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 94वें शहादत दिवस (23 मार्च) पर दिल्ली के शाहबाद डेरी में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की ओर से लगा 'शहीद मेला'

● आशीष

शहीदों की मज़ारों पर,
जुड़ेंगे हर बरस मेले!
वतन पर मरने वालों का,
बाक़ी यही निशाँ होगा!!

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा आयोजित दो दिवसीय (23 एवं 24 मार्च) शहीद मेले की शुरुआत भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की तस्वीरों पर माल्यार्पण व ज़ोरदार नारों के साथ हुई। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता RWPI की सदस्य अदिति, पार्टी के वॉलण्टियर शमशाद एवं देवेन्द्र तथा गंगाराम अस्पताल की वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. अनिता महाजन ने की। कार्यक्रम का संचालन कर रही नौरीन ने बताया कि आज के फ़ासीवादी दौर में हमारे शहीद क्रान्तिकारियों के विचारों की प्रासंगिकता पहले से कहीं ज़्यादा है। आज के अँधेरे समय में भगतसिंह और उनके साथियों के विचार जलती हुई मशाल के समान हैं। शासक वर्ग इन विचारों को आम मेहनतकश जनता तक पहुँचने से रोकने की पूरी कोशिश करते रहे हैं। हम शहीद मेला जैसे कार्यक्रमों के ज़रिये इन इंक़लाबियों के विचारों को लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं। शहीद मेले का आयोजन हमारे महान क्रान्तिकारियों के सपनों को आम लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने और उनके संघर्ष को आगे बढ़ाने का एक और संकल्प है। साथ ही यह मेला एक जनउत्सव भी है। इसके नौजवान भारत सभा की ओर से प्रकाशित एक पुस्तिका का लोकार्पण किया गया। मेले में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट लीग के कलाकार साथियों द्वारा भगतसिंह के जीवनवृत्त और क्रान्तिकारी आन्दोलन के दौर के महत्वपूर्ण घटनाक्रम और आज के दौर में उसके महत्व पर केन्द्रित कला प्रदर्शनी लगायी गयी थी। शहीद मेला आयोजन समिति की सांस्कृतिक टीम की ओर से कई क्रान्तिकारी गीतों प्रस्तुति भी की गयी। इसके अलावा मेले में खाने-पीने के स्टॉल, झूले और बच्चों के लिए खेलकूद के स्टॉल भी लगाये गये थे। मेले के दौरान मेले में शाहबाद डेरी व आसपास के इलाक़े से क़रीब 4000-5000 लोगो ने भागीदारी की। बुराड़ी के 'सावित्रीबाई फुले-फ़ातिमा शेख' पुस्तकालय के बच्चों ने भगतसिंह के विचारों और आज के वक़्त पर आधारित एक नाटक की प्रस्तुति की। इनमें से कई बच्चों ने भगतसिंह पर अपनी लिखी कई कविताएँ भी सुनायीं। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की सांस्कृतिक टोली ने शहीदों की याद में कई क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये। इसके बाद शाहबाद डेरी के बच्चों की ओर से एक प्रेमचन्द की कहानी पर नाटक 'ईदगाह' प्रस्तुत किया गया। इलाक़े के बच्चों ने बहुत कम तैयारी के बावजूद शानदार समूह नृत्य भी पेश किये।

तर्कशील सोसाइटी (पंजाब) से आये रामकुमार जी ने बच्चों को जादू के खेल के ज़रिये कई अन्धविश्वासों से परदा हटाया और इनके विभिन्न "चमत्कारों" के पीछे के वैज्ञानिक कारणों के बारे में बताया। शहीद मेला आयोजन समिति की सांस्कृतिक टोली की ओर से 'हमें तुम्हारा नाम लेना है' नामक नाटक की प्रस्तुति की गयी। नाटक की कथावस्तु भगतसिंह और उनके जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं, आज़ादी के आन्दोलन और समाज तथा भगतसिंह के वैचारिक पक्ष के इर्द-गिर्द रची गयी थी। नाटक में युवा कलाकार रउफ़ ने संगीत की शानदार प्रस्तुति दी। कलाकारों के अभिनय की दर्शकों ने भी खूब सराहना की।

नाटक में काकोरी के शहीदों को फाँसी का दृश्य दिखाते हुए अशफ़ाक़-बिस्मिल के एकता के पैग़ाम को जनता के सामने प्रमुखता से रेखांकित किया गया। अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ ने कहा था कि सात करोड़ मुसलमानों को शुद्ध करना नामुमकिन है और इसी तरह यह सोचना भी फ़िज़ूल है कि पच्चीस करोड़ हिन्दुओं से इस्लाम क़बूल करवाया जा सकता है। मगर यह आसान है कि हम सब ग़ुलामी की ज़ंजीरें अपनी गर्दन में डाले रहें। रामप्रसाद बिस्मिल ने कहा था कि यदि देशवासियों को हमारे मरने का जरा भी अफ़सोस है तो वे जैसे भी हो हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें यही हमारी आख़िरी इच्छा है, यही हमारी यादगारी हो सकती है। महिलाएँ-बच्चे मेले में घूमने के लिए नये कपड़े पहनकर आ रहे थे। अपने इलाक़े में इस तरह के मेले का उनका पहला अनुभव था। मेले के दौरान केवल बच्चे ही नहीं बल्कि बड़े लोगों ने भी इसमें काफ़ी दिलचस्पी दिखायी। लोगों ने कार्यक्रमों में शिरकत करने के अलावा गोलगप्पे, आइसक्रीम, फालूदा, पकौड़े आदि के स्टॉलों पर भी लुत्फ़ उठाया। बच्चों के लिए खेलने के स्टॉल भी मेले के दौरान काफ़ी गुलज़ार रहे। RWPI की ओर से साथी अदिति ने कहा कि आज त्योहारों पर धार्मिक आवरण चढ़ा दिया गया है। एक वक़्त था जब इन त्योहारों को मनाने के पीछे का आधार खेती में फ़सल की कटाई और उसका सामूहिक जश्न होता था। लेकिन पूँजी के प्रवेश के बाद लोगों की ये सामूहिकता भी उनसे छीन ली गयी, और हर चीज़ को बाज़ार के हवाले कर दिया गया। इन त्योहारों को धार्मिक रंग देकर शासक वर्ग ने अपनी लूट-खसोट को धार्मिक वैधता प्रदान करने का काम किया है। आज तो यह एक क़दम और आगे बढ़ चुका है जब फ़ासीवादी ताक़तें अपने फ़ासीवादी प्रचार और दंगे कराने में त्योहारों का इस्तेमाल कर रही है। रामनवमी से लेकर होली और दिवाली जैसे त्योहारों को साम्प्रदायिक माहौल बनाने का ज़रिया बना दिया गया है।

ऐसे में मज़दूरों के इस तरह के मेलों की ज़रूरत और भी बढ़ जाती है। ऐसे कार्यक्रमों के ज़रिये हम आम मेहनतकश आबादी में सामूहिकता की भावना को फिर से जगाना चाहते हैं और साथ ही अपनी क्रान्तिकारी विरासत से लोगों को परिचित भी करा रहे हैं। नौजवान भारत सभा के विशाल ने कहा कि भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु ने हँसते-हँसते अपने देश की मेहनतकश जनता की असल मायने में स्वतन्त्रता की ख़ातिर अर्थात् मेहनतकशों के शासन का सपना आँखों में लिये अपनी जान की क़ुर्बानी दी थी। हमारे ये क्रान्तिकारी केवल बहादुर नायक मात्र नहीं थे, बल्कि विचारवान लोग थे। भगतसिंह युगान्तरकारी विचारक थे। हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनके विचारों को जन-जन तक पहुँचाएँ। जेल से नौजवानों के नाम लिखे अपने एक पत्र में भगतसिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने कहा था कि आज नौजवानों को क्रान्ति का सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फ़ैक्ट्री-कारख़ानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।

मज़दूरों के लिए यह मेला एक यादगार अनुभव था। कुछ कमियों के बावजूद इस सफ़ल आयोजन के बाद इलाक़े में लोगों के हौसले बुलन्द हुए। अपने महान शहीदों के सपनों का समाज बनाने के संघर्ष को आगे बढ़ाने का संकल्प मूर्त रूप में लोगों के समक्ष उपस्थित हुआ। इस तरह के मेले आम तौर पर मज़दूर इलाक़ों में नहीं होते। हज़ारों लोगों का मेले में शामिल होना मेले के प्रति उनकी दिलचस्पी को दर्शाता है। लोगों की भागीदारी केवल मेले में शामिल होने तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने इसकी पूरी तैयारी में योगदान दिया। टेण्ट लगाने से लेकर, सजावट करने तक के काम में इलाक़े के नौजवान वॉलण्टियर बने। मेले में हुए ख़र्च का अधिकतम हिस्सा भी इलाक़े से ही जुटाया गया। मेले के दौरान आने वालों ने भी आर्थिक सहयोग किया। इससे यह भी साबित हुआ कि आम मेहनतकश आबादी अपने संसाधनों के दम पर अपने संघर्षों के साथ-साथ अपने उत्सवों और जश्न भी आयोजित कर सकती है। भविष्य में इस क़िस्म के कार्यक्रमों का नियमित आयोजन किया जायेगा।

छावा : फ़ासीवादी भोंपू से निकली एक और प्रोपेगैण्डा फ़िल्म

● सूरज

फ़ासीवादी राजनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इसका प्रचार तन्त्र होता है। इतिहास का मिथकीकरण और मिथकों को इतिहास बनाने में फ़ासीवादी ताक़तें अपने प्रचार तन्त्र का व्यापक तौर पर इस्तेमाल करती है। भारत में यह काम मीडिया तन्त्र से लेकर संघ द्वारा गली-मोहल्लों में लगायी जाने वाली शाखाओं के द्वारा किया जा रहा है। लेकिन आज के वक़्त में नफ़रत को फैलाने वाले इस प्रचार तन्त्र में एक अहम भूमिका फ़िल्मों व सोशल मीडिया पर मौजूद छोटे वीडियो और रील की है। जहाँ एक तरफ़ तकनोलॉजी की वजह से भाजपा और संघ का आईटी सेल बड़े पैमाने पर छोटे-छोटे वीडियो और रील के माध्यम से मुस्लिम-विरोधी प्रोपगैण्डा फैला रहा है, वहीं दूसरी ओर बॉलीवुड में ऐसी कई फ़िल्मों को बहुत तेज़ी से बढ़ावा दिया जा रहा है, जो सीधे-सीधे भाजपा और आरएसएस के प्रचार तन्त्र के तौर पर काम कर रही हैं। इस दौरान *केरला स्टोरी, जहाँगीर नेशनल यूनिवर्सिटी, कश्मीर फ़ाइल्स, आरआरआर, बाहुबली* समेत ऐसी कई फ़िल्मों की बाढ़ सी आयी है जो या तो प्रत्यक्ष या फिर परोक्ष रूप से भाजपा और आरएसएस के प्रचार को (या यूँ कहें कि नफ़रती ज़हर को) अवाम के बीच परोसने का काम कर रही है।

इसी कड़ी की अगली फ़िल्म है, *छावा*। यह फ़िल्म सत्रहवीं शताब्दी के दौरान मराठा राजा शिवाजी के बेटे सम्भाजी के जीवन पर बनी है। इस फ़िल्म के किरदार सम्भाजी पर उतनी ज़ोर-जबरदस्ती और ज़ुल्म नहीं किया गया होगा, जितना कि फ़िल्मकारों ने इतिहास और तथ्यों के साथ किया है। वैसे तो इस फ़िल्म के लगभग सभी दृश्यों का ऐतिहासिक तथ्यों के ज़रिये खण्डन किया जा सकता है और दिखाया जा सकता है कि लगभग पूरी फिल्म ही मिथकों, झूठों और तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करने पर आधारित है। लेकिन जगह की कमी को देखते हुए हम इस फ़िल्म के कुछ चुनिन्दा दृश्यों का ही चयन कर रहे हैं, जो अपने आप में इस फ़िल्म की असलियत को बेपर्द करने में काफी होंगे।

फ़िल्म के एक दृश्य में एक हिन्दू राजा का चित्रण आता है, जो कि एक क्रूर मुग़ल शासक के सामने बेड़ियों में बँधा है, वह ख़ून से लथपथ है और उसके चारों ओर मुस्लिम सिपाही खड़े हैं, जिनमें से हर किसी की लम्बी दाढ़ी है। इस दृश्य के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की गयी है कि किस प्रकार मुग़ल शासक औरंगजेब द्वारा एक हिन्दू राजा को प्रताड़ित किया गया था, क्योंकि वह हिन्दू राजा हिन्दू धर्म और "हिन्दवी स्वराज" को बचाने की लड़ाई लड़ रहा था। लेकिन इतिहासकारों का इस पर क्या कहना है? इतिहासकार सेतु माधवराव पगडी ने "हिन्दवी स्वराज" की अवधारणा को सिरे से ख़ारिज किया है। और "हिन्दवी स्वराज" पर मिले अब तक के प्रमाणों की वैधता को भी इतिहासकारों ने ख़ारिज कर दिया है। साथ ही जिस शिवाजी के "हिन्दवी स्वराज" के सपने की बात फ़िल्म में की गयी है, उसपर ख़ुद उनके बेटे सम्भाजी ने हमला किया था। वास्तव में, हिन्दवी शब्द का हिन्दू धर्म से कोई लेना-देना ही नहीं था। यह शब्द एक निश्चित क्षेत्र और उसमें रहने वाले और कुछ निश्चित भाषाएँ बोलने वाले लोगों के लिए किया गया था और इन लोगों में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही शामिल थे। यह शब्द बना ही एक अरबी शब्द 'हिन्द' से है।

फ़िल्म की शुरुआत अभिनेता अजय देवगन की आवाज़ से होती है, जिसमें कुछ तस्वीरों के साथ भारत का इतिहास दिखाया जाता है, जो वास्तव में मिथकीकृत कहानी है। इसमें तथ्य जैसा कुछ भी नहीं है। इन दृश्यों में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार भारत में औरंगज़ेब ने भारत देश को जिसे फ़िल्म में एक "मन्दिर" के रूप में बताया गया है, तबाह किया और शिवाजी ने औरंगज़ेब के ख़िलाफ़ जंग छेड़कर इसे बचाया। इस प्रकार यह फ़िल्म मिथकों के ज़रिये एक गौरवशाली अतीत को रचने का काम करती है। लेकिन जैसे ही हम तथ्यों को सामने लेकर आते हैं, वैसे ही इस समूचे मिथकीकृत इतिहास की असलियत सामने आ जाती है।

पहला तथ्य तो यही है कि यह फ़िल्म किसी ऐतिहासिक घटना पर नहीं बल्कि यह शिवाजी सावन्त के एक उपन्यास पर बनी है। लेकिन इसे पेश ऐसे किया जा रहा है जैसे कि यह इतिहास को चित्रित कर रही है। दूसरा, अगर ऐतिहासिक तथ्यों पर ग़ौर करें, तो यह बात तो स्पष्ट तौर पर समझ में आ जाती है कि औरंगज़ेब और शिवाजी के बीच की लड़ाई कोई धर्म-रक्षा की लड़ाई नहीं थी बल्कि पूरी तरह से अपनी राजनीतिक सत्ता के विस्तार की लड़ाई थी। **शिवाजी की सेना में कितने ही मुस्लिम सेनापति मौजूद थे, साथ ही औरंगज़ेब की सेना और दरबार में हिन्दू मन्त्री, सेनापति और सैनिक भारी संख्या में मौजूद थे।** औरंगज़ेब का मकसद अगर सभी को मुसलमान बनाना होता, तो ज़ाहिरा तौर पर पहले वह अपने दरबार और अपनी सेना में अगुवाई और सरदारी की स्थिति में मौजूद हिन्दुओं को मुसलमान बनाता। धर्मान्तरण का जब कभी उसने इस्तेमाल किया तो वह भी राजनीतिक वर्चस्व और अहं की लड़ाई का हिस्सा था, न कि इस्लाम का राज भारत में क़ायम करने की मुहिम।

अध्येता राम पुनियानी समेत कई इतिहासकारों के मुताबिक़ औरंगज़ेब और कई मुस्लिम शासकों ने कितने ही मन्दिरों को बनवाने के लिए दान दिये थे। मसलन, सोमेश्वर महादेव मन्दिर स्वयं औरंगज़ेब ने बनवाया था और इस मन्दिर के धर्मदण्ड पर यह बात दर्ज है। **श्रृंगेरी शारदा मन्दिर भी इसका प्रातिनिधिक उदाहरण है जिसे सन् 1791 में मराठा सेना ने तोड़ दिया था और जिसका पुनर्निर्माण टीपू सुल्तान ने करवाया था।** और ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि कई मुस्लिम शासकों ने मन्दिरों के लिए न सिर्फ़ दान दिये थे, बल्कि उनमें से कुछ का निर्माण भी करवाया था। अतः इतिहास की जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस क़िस्म के बचकाने तर्क पर केवल हँस सकता है। लेकिन फ़ासीवादी ताक़तें झूठ का प्रचार बड़े पैमाने पर इसी रूप में करती हैं ताकि मिथकों को हमारे दिमाग़ में स्थापित सामान्य बोध बना दिया जाय, जिस पर हम सवाल ही न कर सकें, बस आदतन उसे सच मान बैठें। इस फ़िल्म द्वारा की जाने वाली सैकड़ों करोड़ की कमाई इस बात का सूचक है कि एक बड़ी आबादी इस प्रचार के बहाव में बह रही है। इसलिए इस फ़िल्म के (कु) तर्कों का खण्डन करना बेहद ज़रूरी है।

फ़िल्म के दौरान कुछ दृश्यों को इस तरह से फिल्माया गया है जहाँ मुस्लिम सेना को हिन्दू इलाक़े में जाकर आम लोगों पर ज़ुल्म करते दिखाया गया है। इसे इस रूप में दिखाया गया है कि हिन्दू बच्चों को मारना, उनके घर जलाना, महिलाओं का बलात्कार करना इस्लाम धर्म के लोगों में अन्तर्निहित है। **ऐतिहासिक तथ्यों से दिखलाया जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत से लेकर मुगल काल तक ऐसा बर्ताव मुसलमानों ने नहीं किया और न ही हिन्दुओं ने किया था। वास्तव में, उस दौर में हुए तमाम युद्ध साम्राज्यों, रियासतों आदि के बीच के राजनीतिक टकराव थे और धर्म उनमें कोई मसला नहीं था। लगभग सभी युद्धों में दोनों ओर की सेनाओं में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही हुआ करते थे। शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेरकर औरंगज़ेब से समझौता करने, उन्हें 23 किले सौंपने और औरंगज़ेब की मातहती स्वीकार करने को मजबूर करने का काम एक हिन्दू राजा जयसिंह ने किया था।**

मुसलमानों को एक घिसी-पिटी छवि के आधार पर बनायी गयी एक ख़ास वेशभूषा में दिखाकर यह फ़िल्म एक तरीक़े से लोगों के बीच ऐसी वेशभूषा और मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत के बीज बोने का काम करती है। एक तरफ़ इन दृश्यों के ज़रिये तो यह फ़िल्म मुस्लिमों के ख़िलाफ़ नफ़रत तो पैदा करती ही है, वहीं दूसरी तरफ़ आज जो मुस्लिमों के ख़िलाफ़ हिंसा की जा रही है उसे भी सही ठहराने का काम करती है। गुजरात दंगों के दौरान जो भयावह तस्वीर हमारे सामने आयी थी, जब संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियों के हैवान त्रिशूल से गर्भवती महिलाओं का पेट चीरकर ख़ुद की बहादुरी का सन्देश दे रहे थे, जब गाँव-गाँव में जाकर संघी गुण्डे मुस्लिम महिलाओं का बलात्कार कर उन्हें मौत के घाट उतार दे रहे थे, वे अभी किसी भी न्यायप्रिय व संवेदनशील इन्सान के मस्तिष्क से उतरे नहीं हैं; या फिर धर्म के नाम पर भीड़ द्वारा मुस्लिम युवकों को पीट-पीटकर मार देने, या हर त्योहार पर इलाक़ों दंगे भड़काने, या फिर सोशल मीडिया पर मुस्लिम महिलाओं के छेड़खानी और बलात्कार जैसे अपराध को प्रचारित करने वाले 'ज़ालिम हिन्दू' जैसे पेज के बनाये जाने को यह फ़िल्म सही ठहराने का काम करती है। यह समझा जा सकता है क्योंकि संघियों के एक गुरू सावरकर ने मुसलमानों के खिलाफ़ बलात्कार व हत्या को जायज़ हथियार ठहराया था।

इस फिल्म द्वारा बहुत महीन तरीक़े से दर्शकों के दिमाग़ में यह डालने की कोशिश करती है कि चूँकि उस दौर में मुस्लिम शासकों ने हिन्दू लोगों पर बर्बरता दिखायी (जो कि मिथक से ज़्यादा कुछ भी नहीं है, और ऐतिहासिक तौर पर जो इतिहासकरों द्वारा सिरे से ख़ारिज किया जा चुका है), इसलिए आज हिन्दुओं (असल में संघ और उसकी गुण्डा वाहिनियों) को भी मुस्लिमों पर इस क़िस्म के बर्बर अत्याचार करने चाहिए। **यही इस फिल्म का असल मक़सद है: धार्मिक वैमनस्य फैलाकर मुसलमानों के ख़िलाफ़ पूरे देश में साम्प्रदायिक माहौल तैयार करना।** इसका नतीजा नागपुर में सामने भी आने लगा है।

पद्मावत, छावा, पानीपत जैसी फ़िल्में भले ही ऐतिहासिक किरदारों और ऐतिहासिक वक़्त (जिस प्रकार यह ख़ुद को पेश करती है) पर आधारित हों, लेकिन ये फ़िल्में आज के दौर के फ़ासीवादी प्रचार को गति देने वाली आधुनिक फ़िल्में हैं जो वास्तविक इतिहास और तथ्यों के साथ दुराचार कर उन्हें फ़ासीवादी साम्प्रदायिक प्रचार में फिट करने का काम करती हैं।

फ़ासीवाद की यह एक अहम चारित्रिक अभिलाक्षणिकता है कि यह शुद्ध रूप से एक काल्पनिक समुदाय (जैसे कि "हिन्दू राष्ट्र") का निर्माण करता है, और और ख़ुद को उस समुदाय के एकमात्र प्रवक्ता के रूप में पेश करता है। साथ ही इस विचारधारात्मक समुदाय के बरक्स दूसरे समुदाय को एक नक़ली शत्रु के रूप में पेश करता है, जैसा कि संघ परिवार व मोदी सरकार द्वारा मुसलमानों के साथ किया जा रहा है। इस नक़ली दुश्मन को बहुसंख्यक समुदाय की जनता की सारी दिक़्क़तों के लिए जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है, मसलन, बेरोज़गारी, महँगाई, आदि। इस प्रकार इन समस्याओं के लिए वास्तव में जिम्मेदार पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग को मोदी सरकार व संघ परिवार जैसे फ़ासीवादी कठघरे से बाहर कर देते हैं। जर्मनी में यह नक़ली शत्रु यहूदी थे और वहाँ पर शुद्ध रूप से काल्पनिक समुदाय था "जर्मन आर्य राष्ट्र", हालाँकि इसमें कुछ भी वास्तविक नहीं था। ऐसा कोई आर्य राष्ट्र मौजूद नहीं था। जर्मनी में आर्य नस्ल की यही एकमात्र पहचान बना दी गयी थी कि वे यहूदी नहीं थे, और भारत में संघ के "हिन्दू राष्ट्र" के सभी सदस्यों में और कुछ भी साझा नहीं है सिवाय इसके कि वे मुसलमान नहीं हैं। इतना ही नहीं, फ़ासीवादी ताक़तें धीरे-धीरे इस नक़ली शत्रु के दायरे को बढ़ाती है, और हर वह शख़्स जो फ़ासीवादी फ़्यूहरर या संगठन के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है उसे भी उस नक़ली दुश्मन के दायरे में शामिल कर लिया जाता है। जर्मनी के भीतर भी इस पहचान को स्थापित करने में वहाँ के मीडिया तन्त्र समेत रेडियो और कला के अन्य माध्यमों की अहम भूमिका रही थी, और आज भारत में भी फ़ासीवादी प्रचार तन्त्र का एक बड़ा हिस्सा इसमें दिन रात लगा है।

आज इस प्रचार तन्त्र के बरक्स हमें जनता के असल मुद्दों को उनके कारणों के साथ प्रचारित करना होगा, क्योंकि फ़ासीवादी प्रचार तन्त्र का अन्तिम लक्ष्य ही यही होता है कि जनता को उनके असल मुद्दों से भटकाकर उन्हें आपस में लड़ा दिया जाये, ताकि देश की मुट्ठीभर आबादी द्वारा की जाने वाली लूट बरकरार रह सके। लेकिन इन तमाम विशालकाय प्रचार तन्त्र के बावजूद फ़ासीवादियों की पूरी राजनीति झूठ पर टिकी होती है। इसके बरक्स क्रान्तिकारियों के पास सच की ताक़त होती है, वह सच जिससे अवाम हर दिन, हर वक़्त मुख़ातिब होता है। इस सच के ज़रिये ही हम असल में फ़ासीवादियों के खोखले प्रचार की धज्जियाँ उड़ा सकते हैं। लेकिन इसके लिए भी मेहनतकश वर्ग को जनता के संसाधनों के दम पर अपने प्रचार तन्त्र खड़े करने होंगे और इससे ही हम फ़ासीवादी राजनीति को बेपर्द कर सकते हैं। 'छावा' जैसी फ़ासीवादी प्रचार फिल्म के झूठों और बकवासों को सामने लाना भी हमारे इस काम का हिस्सा हैं। **हम मज़दूरों को भी अपने देश का वास्तविक इतिहास पढ़ना होगा ताकि हम फ़ासीवादियों द्वारा इतिहास के मिथकीकरण को पहचान सकें और उसका जवाब दे सकें।**

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत दिवस (23 मार्च) पर शशि प्रकाश की कविता

नयी सदी में भगतसिंह की स्मृति

एक दुर्निवार इच्छा है
या एक पागल-सा संकल्प
कि हमें तुम्हारा नाम लेना है एक बार
किसी शहर की व्यस्ततम सड़क के बीचो-बीच खड़ा होकर
एक नारे, एक विचार, एक चुनौती
या एक स्वगत-कथन की तरह,
जैसे कि पहली बार,
और अपने को एकदम नया महसूस करते हुए।

नहीं,
यह कोई क़र्ज़ उतारना नहीं,
देश की छाती से कोई बोझ हटाना भी नहीं
विस्मृति की ग्लानि का,
(वह यूँ कि जब स्मृति थी
तब भी कितना था परिचय वास्तव में ?)
यह तो महज़
अँधेरे में रख दिये गये एक दर्पण के बारे में
कुछ बातचीत करनी है अपने-आप से।

सोचना है कि अँधेरे तक
किस तरह ले जाया गया था वह दर्पण
और किस तरह अँधेरा लाया जा रहा है आज
हर उस जगह
जहाँ कोई दर्पण है।

जहाँ भी है परावर्तन की सम्भावना,
किरणों का प्रवेश वर्जित है
और कहीं आग लग रही है
कहीं गोली चल रही है।[1]

हमें तुम्हारा नाम लेना है
उठ खड़े होने की तरह,
देश को धकापेल बनाने या
वाशिंगटन डी.सी. का कूड़ाघर बनाने की
बर्बर-असभ्य या
कला-कोविद कोशिशों के विरुद्ध।

नहीं, यह कोई भाव-विह्वल श्रद्धांजलि नहीं,
यह नीले पानी वाली उस गहरी झील तक
फिर एक यात्रा है
उग आये झाड़-झँखाड़ों के बीच
खो गया रास्ता खोजने की कोशिश करते हुए,
या शायद, कोई भी राह बनाकर वहाँ तक पहुँचने की
जद्दोजहद-भर है,
या शायद ऐसा कुछ
जैसे हम किसी विचार के छूटे हुए सिरे को
पकड़ते हैं
आगे खींचने के लिए।

हमें तुम्हारा नाम लेना है
इसलिए नहीं कि तुम्हारे नामलेवा नहीं।
संसद के खम्भे भी तुम्हारा नाम लेते हैं
बिना किसी उच्चारण दोष के
और वातानुकूलित सभागारों में
तुम्हारी तस्वीरें हैं और फूल-मालाएँ हैं
और धूपबत्तियों का ख़ुशबूदार धुआँ है।

एक ख्यातिलब्ध राजनयिक कहता है
कि तुम प्रयोग कर रहे थे क्रान्ति के साथ
और बाज़ार सुनता है
और रक्त-सने हत्यारे हाथों से
विमोचित हो रही है
तुम्हारी शौर्य-गाथा पर आधारित नयी बिकाऊ किताब
और एक बूढ़ा विलासी पियक्कड़-पत्रकार
अपने अख़बारी कॉलम में तुम्हें याद करता हुआ
अपने पूर्वजों के पाप धो रहा है।

हमें तुम्हारा नाम लेना है
कि वे लोग ख़ूब ले रहे हैं तुम्हारा नाम
जिन्हें ख़तरा है
लोगों तक पहुँचने से तुम्हारा नाम
सही अर्थों में।

इसलिए सुनिश्चित ऐतिहासिक अर्थों का
सन्धान करते हुए
हमें फिर थकी हुई नींद में डूबे
घरों तक जाना है लेकर तुम्हारा नाम।

कई बार हमें विचारों को कोई नाम देना होता है
या कोई संकेत-चिह्न
और हम माँगते हैं इतिहास से ऐसा ही कोई नाम
और उसे लोगों तक
विचार के रूप में लेकर जाते हैं।

हमें तुम्हारा नाम लेना है
एक बार फिर
गुमनाम मंसूबों की शिनाख़्त करते हुए
कुछ गुमशुदा साहसिक योजनाओं के पते ढूँढ़ते हुए
जहाँ रोटियों पर माँओं के दूध से अदृश्य अक्षरों में लिखे
पत्र भेजे जाने वाले हैं, खेतों-कारख़ानों में दिहाड़ी पर
खटने वाले पच्चीस करोड़ मज़दूरों,
बीस करोड़ युवा बेकारों,
उजड़े बेघरों और आधे आसमान की ओर से।

उन्हें एक दर्पण, नीले पानी की एक स्वच्छ झील,
एक आग लगा जंगल और धरती के बेचैन गर्भ से
उफनने को आतुर लावे की पुकार चाहिए।

गन्तव्य तक पहुँचकर
अदृश्य अक्षर चमक उठेंगे लाल टहकदार
और तय है कि लोग एक बार फिर इन्सानियत की रूह में
हरकत पैदा करने के बारे में सोचने लगेंगे।[2]

तुम्हारा नाम हमें लेना है
उस समय के विरुद्ध
जब सजीव चीज़ों में निष्प्राणता भरी जा रही है
एक उज्ज्वल सुनसान में
जहाँ रहते हैं शिल्पी और सर्जक बस्तियाँ बसाकर,
और कभी दिन थे, जब हालाँकि अँधेरा था,
पर अनगिन कारीगर हाथों ने
मिट्टी, राख, रक्त, पानी, धूप और कामनाओं-संकल्पों-
स्मृतियों-सपनों को गूँथकर गढ़े थे लोग
विचारों ने बनाया था जिन्हें सजीव-गतिमान।
तुम्हारा नाम हमें लेना है
कि अधबने रास्ते कभी खोते नहीं,
हरदम कचोटते रहते हैं वे दिलों में
जागते रहते हैं
और पीढ़ियों तक धैर्यपूर्ण प्रतीक्षा के बाद
वे फिर आगे चल पड़ते हैं
और जब भी
पहुँचते हैं अपनी चिर वांछित मंज़िल तक,
तो वहाँ से
एक नयी राह आगे चलने लगती है।

तुम्हारा नाम हमें लेना है
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करते हुए और
इतिहास का लंगर छिछले पानी में डालने की[3]
कोशिशों के ख़िलाफ़,
और विचारों के ख़िलाफ़ जारी
चौतरफ़ा युद्ध के ख़िलाफ़
और उम्मीद जैसे शब्दों को
संग्रहालयों में रख देने के ख़िलाफ़।

...या तो हमें कविता में लानी है यह बात
या फिर किसी भी तरह की काव्य-कला के
आग्रह के बिना ही कह देना है कि
यह सत्ता पलट देनी होगी
जो पूरी नहीं करती हमारी बुनियादी ज़रूरतें
और छीनती है हमारे बुनियादी अधिकार[4]
और विद्वज्जन हैं कि मुख्य सड़कें छोड़कर
पिछवाड़े की गन्दगी और कूड़े भरी गलियों से होकर
आ-जा रहे हैं
ढूँढ़ते हुए कविता का अर्थात्
मेर्कूरी अव्देविच की तरह[5]
और तकिये में सोने की गिन्नियाँ छुपाये
तीर्थाटन पर निकलने को तैयार हैं भिक्षुवेश में
यदि समय कोई ऐसा वैसा आ-जाये तो।

...बल्कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि
बेहद ईमानदार निजी दुःखों, प्यार, झाग, आदिम सरोकारों,
शब्दों, तरलता, मौन, चिन्तन के अकेलेपन,
जनता के सुनसान, पुरस्कार-कामना-बोझिल मन,
सीढ़ियों, रस्सियों, नक़बज़नी के औज़ारों और
निर्लिप्त ख़बरों से भरी
धूसर, चमकीली या साँवली-सलोनी निर्दोष-सी कविताओं के
पाठ के बाद, किसी शाम, जब अपनी पारी आये
तो बस दुहरा दिये जायें
तुम्हारे ये सीधे-सादे शब्द :
"इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

सन्दर्भ

[1] मुक्तिबोध की कविता "अंधेरे में" की पंक्तियाँ..."कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गयी..."

[2] भगत सिंह के प्रसिद्ध कथन का संदर्भ कि..."जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है" तो इस परिस्थिति को बदलने के लिए ज़रूरी होता है कि "क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की जाये, ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"

[3] 'नौजवान भारत सभा' के घोषणापत्र में उद्धृत मैज़िनी की कविता की पंक्तियाँ हैं :

"लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है.
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो
जहाँ ज्वार हरदम ताज़ा रहता है—
और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं..."

[4] 5 मई 1930 को विशेष ट्रिब्यूनल को लिखे अपने पत्र में भगत सिंह ने इसी आशय की बात कही थी।

[5] फ़ेदिन के प्रसिद्ध उपन्यास 'पहली उमंगें' का एक कंजूस व्यापारी पात्र।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

पर्यावरणीय विनाश के चलते सिमटता वसन्त

● सनी

भारत में और दुनिया भर में वसन्त का मौसम धीरे-धीरे सिमटता जा रहा है। इस मौसम में ही फूल खिलते हैं और शरद की ठण्ड में थमा-जमा सा प्रतीत होता जीवन अपने चटख रंगों में फूटकर निखर उठता है। लेकिन पर्यावरण में परिवर्तन के चलते यह ऋतु ही सिमटती जा रही है। न केवल वसन्त बल्कि सभी मौसमों से अधिक ग्रीष्म ऋतु का दौर लम्बा खिंच रहा है। पिछले साल दिल्ली में 50 डिग्री तापमान जाना अभी भी आम जनता की स्मृति से मिटा नहीं है। न सिर्फ़ यह बल्कि पिछले कुछ सालों में ओलावृष्टि, लू, तूफ़ानों और अन्य प्राकृतिक आपदाओं की आवर्तिता में बढ़ोत्तरी हुई है। तेज़, तीखे परिवर्तन और ग्रीष्म ऋतु का विस्तार धरती के तापमान के बढ़ने के कारण हो रहा है। हिमखण्डों के सिमटने से लेकर कई जीव प्रजातियों का विलुप्त होना भी धरती के तापमान बढ़ने के कारण हो रहा है। पर्यावरण में हो रहा यह परिवर्तन एक ऐसी मंज़िल पर पहुँच गया है जहाँ धरती को अपरिवर्तनीय क्षति होने की सम्भावना पैदा हो चुकी है।

नासा के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हान्सेन ने इस साल फ़रवरी में घोषणा की कि यूनाइटेड नेशन्स के *पेरिस समझौते* में वैश्विक तापमान को औद्योगिक क्रान्ति पूर्व से दो सेल्सियस वृद्धि की सीमा तक थामने का क़रार 'मर' चुका है और हम अभी ही इस तापमान वृद्धि से आगे बढ़ चुके हैं। हान्सेन अपने शोध की रिपोर्ट के माध्यम से बताते हैं कि आम जनता को यह पता होना चाहिए कि 'टूसी' (2C) के नाम से जाना जाने वाले इस क़रार का अन्त हो चुका है और इसके नतीजे भयंकर होने वाले हैं। धरती का तापमान 2° सेल्सियस तक बढ़ने के बाद कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ शुरू होने वाली हैं जो अपरिवर्तनीय हैं, मसलन धरती बर्फ़ के आवरण से मुक्त हो जाएगी, सागर धरती के बड़े हिस्से को निगल लेंगे, महत्वपूर्ण महासागरीय धाराएँ मृत हो जायेंगी और आकस्मिक पर्यावरणीय परिवर्तन सामान्य हो चलेंगे। हान्सेन के अनुसार हम 2° सेल्सियस की इस तापमान वृद्धि की 'चट्टान' को पार कर गहरी खाई में गिरने को अभिशप्त हैं और अब धरती पहली जैसी नहीं रहेगी।

हान्सेन यह भी बताते हैं कि आज इस पर्यावरण संकट से बचने का रास्ता किसी आमूलगामी परिवर्तन से ही सम्भव है। हान्सेन इस तबाही का ज़िम्मेदार इस दुनिया के पूँजीपतियों को मानते हैं। लेकिन वह यहाँ आकर रुक जाते हैं। वह यह नहीं कहते हैं कि यह परिवर्तन सामाजिक क्रान्ति के बिना नहीं हो सकता है। वह यह तो कहते हैं कि इस दुनिया की बर्बादी का कारण पूँजीवाद है लेकिन इसे बदलने का रास्ता देने में यह वैज्ञानिक अक्षम है। पर्यावरण को बचाने का रास्ता कॉलेज कैम्पस पाठ्यक्रम में मौजूद विषय 'इकोलॉजी' से नहीं दिया जा सकता है। इसका रास्ता राजनीतिक तौर पर ही दिया जा सकता है। रोके दाल्तोन ने सही ही कहा था कि एक विषय के तौर पर "इकोलॉजी" महज़ "गूँज है, पूँजीवाद द्वारा दुनिया की तबाही से मचे शोर की"। यह विषय ही पर्यावरण में परिवर्तन और वर्गविहीन मानव समाज के सम्बधों की पड़ताल करता है। मौजूदा पर्यावरणीय आपदा न तो प्राकृतिक आपदा है और न ही इसे "मानवनिर्मित" आपदा कहा जाना चाहिए।

चाहे गर्मी हो, सर्दी हो या बिन मौसम आयी बरसात हो, इसका बोझ ग़रीब जनता को ही उठाना पड़ता है। लू में या शीत लहर में जो मरते हैं, बाढ़ में जिनके घर बहते हैं, सूखे में जो प्यासे मरते हैं वे ग़रीब ही हैं। मौसम में आने वाले अनियमित परिवर्तनों की मार से अमीर और उच्च मध्य वर्ग अपने घरों में लगे एसी, हीटर, वाटर प्रूफ़ छतों और अन्य सुविधाओं के दम पर आम तौर पर तात्कालिक तौर पर बच निकलते हैं। पर्यावरण की मार का असर सबसे ज़्यादा ग़रीब आबादी पर होता है और अमीरों की यह आबादी सामान्यतः इससे तात्कालिक तौर पर अप्रभावित ही रहती है तो यह सवाल पूछना भी लाज़मी है कि इसके पीछे ज़िम्मेदार कौन है? इसके दोषी का तब पता चल जाता है जब हम यह देखते हैं कि धरती के तापमान के बढ़ने का कारण क्या है और यह पर्यावरण आपदा में क्यों बदल जाता है? यह विशुद्ध तौर पर मुनाफ़े की खातिर अँधाधुन्ध जीवाश्म-आधारित ईंधन, यानी पेट्रोल व डीज़ल, आदि की खपत के कारण, पूँजीवादी खेती, खान-खदान और उद्योग के कारण जंगलों के सफ़ाये के कारण हो रहा है। धरती पर समुद्र, पर्वत और जंगलों के जीवन-प्रवाह को मौजूदा मुनाफ़ा-आधारित व्यवस्था भंग कर रही है।

धरती पर सूरज की रौशनी का एक हिस्सा वायुमण्डल द्वारा ही वापस भेज दिया जाता है लेकिन रौशनी का एक हिस्सा धरती की सतह और सागर सोख लेते हैं जिसे वह ऊष्मा के रूप में वापस रेडिएट करते हैं। यही धरती के तापमान को एक निश्चित सीमा तक ले जाता है जिस सीमा के भीतर एक समय धरती की सतह पर जीवन की प्रक्रिया शुरू हो सकी और आज भी जारी है। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के बाद से धरती के गर्भ से जीवाश्म ईंधन को निकालकर जलाने की वजह से धरती का तापमान अपनी नैसर्गिक तापमान वृद्धि से अधिक तेज़ी से बढ़ रहा है। धरती पर जीवन सूरज की रौशनी को ही सोखकर संचालित होता है और एक तय सीमा तक तापमान सीमित रहता है। जीवाश्मों के जलने से जमी हुई मृत "सूरज की रौशनी" जीवित सूरज की रौशनी के साथ मिलकर तापमान को अधिक तेज़ी से बढ़ा रही है। इसके चलते ही धरती पर ऐसे बदलाव हो रहे हैं जो जीवन के कई रूपों के लिए अन्तकारी सिद्ध हो रहे हैं। यह ऐसा है मानो धरती को बुखार चढ़ गया हो। बुखार एक सीमा से आगे जाए तो मनुष्य के लिए जिस प्रकार जानलेवा होता है वैसे ही धरती पर तापमान वृद्धि भी धरती पर जीवन के लिए जानलेवा है। यह भयंकर होती परिस्थिति सबसे अधिक नाशकारी इस धरती की आम ग़रीब मेहनतकश जनता के लिए है।

जानलेवा होते ये पर्यावरण परिवर्तन पूँजी द्वारा प्रकृति की अन्धी लूट के कारण हैं। पर्यावरण परिवर्तन की तमाम चिन्ता पूँजीवादी देशों के हुक्मरानों के एजेण्डे में ही नहीं हैं। उनकी चिन्ता मुनाफ़े की गिरती दर को रोकने के ख्यालों और प्रयासों में ही डूबी है जो उन्हें श्रम और प्रकृति को और अधिक लूटने की ओर ही धकेलती है। भारत सरकार द्वारा जंगलों से लेकर पर्वतों, नदियों को नष्ट करने की योजनाओं पर मुहर लगाने से लेकर साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा ग्रीनलैण्ड, आर्कटिक और अण्टार्क्टिक में जीवाश्म ईंधन के भण्डार की लूट के लिए रस्साकशी हो या ब्राज़ील के अमेज़न जंगलों की तबाही, यह स्पष्ट है कि पर्यावरण को बचाना इनके एजेण्डे में है ही नहीं। स्पष्ट ही है कि पर्यावरण को बचाने का मुद्दा भी आम मेहनतकश जनता के जीने के हक़ से जुड़ा मुद्दा है। पर्यावरण वैज्ञानिक हान्सेन की '2 सी इज़ डेड' की यह चेतावनी पूँजीवादी हुक्मरानों के बहरे कानों पर पड़ रही है। यह मसला आज मज़दूरवर्गीय राजनीति का अहम मुद्दा है। यह दुनिया के मज़दूरों और मेहनतकशों के जीवन के अधिकार का ही मुद्दा है और इसके लिए संघर्ष भी मज़दूरवर्गीय राजनीति से ही लड़कर दिया जा सकता है न कि हुक्मरानों के आगे की गयी गुहारों से!

● पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 1880 के बाद से लगातार बढ़ रहा है। जबसे तापमान मापा जा रहा है तबसे 2024 अब तक का सबसे गर्म वर्ष रहा है, और पिछले 10 साल अब तक के सबसे गर्म वर्ष रहे हैं।

● पिछले वर्ष आयी ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट ने यह दिखलाया है कि दुनिया के 1 प्रतिशत सबसे अमीर लोग 16 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए और 10 प्रतिशत सबसे अमीर लोग 50 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं।

● दुनिया के सबसे ग़रीब 66 प्रतिशत लोग, जिसमें हम और आप भी शामिल हैं, जितना कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन करते हैं, उससे ज़्यादा प्रदूषण दुनिया के 1 प्रतिशत लोग करते हैं।

● 2022 में 125 अरबपतियों ने अपने उद्योगों में औसतन 30 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन किया जबकि दुनिया की सबसे ग़रीब 90 प्रतिशत आबादी इस साल औसतन महज़ 3 टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार थी।

● ग्रीनपीस फ़ाउण्डेशन के अनुसार पिछले तीन सालों में यूरोप के अमीरों ने अपने निजी हवाई जहाज़ों से 53 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन किया है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006